मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 78 ● वर्ष 9, अंक 03-04 ● मई-जून 2019 (संयुक्तांक) ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

चुनाव ख़त्म - मज़दूरों की छँटनी शुरू 3

ईवीएम के इस्तेमाल को लेकर आपको क्यों चिन्तित होना चाहिए? 7

बंगाल में भाजपा की सफलता और संसदीय वाम राजनीति के कुकर्म 13

मोदी सरकार की वापसी : मेहनतकश जनता पर नये कहर की शुरुआत

यह हताश-निराश होने का नहीं बल्कि फासीवाद-विरोधी संघर्ष के नये दौर की शुरुआत करने का समय है!

सम्पादक मण्डल

पूँजीपति वर्ग की खुली तिजोरियों की ताक़त, झूठे राष्ट्रवाद के अन्धाधुन्ध प्रचार और चुनाव में तमाम तरह के हथकण्डों-घोटालों के दम पर मोदी सरकार एक बार फिर सत्ता में आ गयी है। संसद में मोदी के सद्भावना से भरे भाषण को भूल जाइये, इस सरकार ने महीने भर से भी कम समय में दिखा दिया है कि पिछले पाँच वर्ष के दौरान देश की मेहनतकश जनता पर मुसीबतों का जो कहर टूटा, आने वाले दिन उससे भी बुरे होने वाले हैं।

पिछले 45 साल का रिकॉर्ड तोड़ रही बेरोज़गारी की जिस ख़बर को झुठलाने में पूरी सरकार जुट गयी थी, सरकार बनते ही उसे बेशर्मी के साथ स्वीकार कर लिया गया। मोदी के आर्थिक सलाहकार रहे अरविन्द सुब्रमण्यम ने कलई खोल दी कि जीडीपी बढ़ने के जो गुलाबी आँकड़े पेश करके सरकार जनता को आने वाले अच्छे दिनों के हसीन सपने दिखा रही थी, वे फ़र्ज़ी आँकड़े थे। पुलवामा में आतंकवादी हमले में सैनिकों की मौत को बेशर्मी से चुनाव जीतने में इस्तेमाल करने और देश को "सुरक्षित रखने" का दावा करने वाले मोदी के दूसरे कार्यकाल की शुरुआत में ही एक के बाद एक कई आतंकवादी हमले हो चुके हैं, मगर अब कोई सवाल नहीं उठता। चुनाव ख़त्म होते ही मज़दूरों की बेहिसाब छँटनी का सिलसिला शुरू हो चुका है। महँगाई तेज़ी से बढ़ने लगी है। मुज़फ़्फ़रपुर में कुपोषण और बीमारी से इलाज के अभाव में मरते बच्चों ने विकास के सारे दावों को एक घिनौना मज़ाक बना दिया है।

मोदी की दूसरी जीत ने प्रगतिशील, वाम और उदारवादी बुद्धिजीवियों के साथ ही आम मेहनतकशों, अल्पसंख्यकों और दलित-वंचित समुदायों के एक बड़े हिस्से में भी निराशा पैदा की है जो पिछले पाँच वर्षों के पागलपन और ज़ुल्म से निजात पाने की उम्मीद लगाये हुए थे। हालाँकि उन बुद्धिजीवियों के लिए यह सदमा ज़्यादा गहरा है जो इतिहास के सभी अनुभवों की अनदेखी करते हुए चुनावों में हराकर फ़ासीवाद को पीछे धकेल देने का मुगालता पाले हुए थे। ऐसे तमाम लोग अब जनता को ही कोसने और गालियाँ देने में लगे हैं कि उसने क्यों फ़ासिस्टों को दोबारा सत्ता सौंप दी। वे यह भूल गये कि यही जनता थी जो बंगाल, केरल और त्रिपुरा में वाम मोर्चा सरकारों को बार-बार चुनती रही थी। इसी जनता ने भाजपा के शासन के बाद यूपीए को भी दो बार सत्ता सौंपी थी–एक बार वाम के समर्थन से और एक बार उसके बग़ैर। ऐसे बुद्धिजीवियों से तो यही कहा जा सकता है कि उन्हें बेर्टोल्ट ब्रेख़्ट की कविता को याद करके अपने लिए नयी जनता चुन लेनी चाहिए।

मोदी की दोबारा जीत क्यों मुमकिन हुई?

क्या कारण है कि पिछले पाँच वर्षों में बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार के सारे कीर्तिमान ध्वस्त होने के बाद भी भाजपा को ऐसी जीत मिली है? बहुत से लोगों को उम्मीद थी कि आर्थिक मोर्चे पर मोदी सरकार के पूरी तरह नाकाम होने के बाद उसकी हार पक्की होगी। बेशक, ऐसा हो सकता था, अगर जनता के सामने कोई वास्तविक विकल्प मौजूद होता। मगर यह सोच सही नहीं थी कि नोटबन्दी,

(पेज 9 पर जारी)

मुज़फ़्फ़रपुर : एक और सामूहिक हत्याकाण्ड

जिस वक़्त देश का खाया-पिया-अघाया मध्यवर्ग क्रिकेट मैच में पाकिस्तान को हराने की ख़ुमारी में झूम रहा था और पार्टी कर रहा था और देश का गृहमंत्री इसे एक और 'सर्जिकल स्ट्राइक' बताते हुए ट्वीट कर रहा था, उसी समय बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले में एक्यूट इन्सेफ़्लाइटिस (चमकी बुखार) से सौ से ज़्यादा बच्चों की मौत चन्द दिनों में हो चुकी थी। पूरे बिहार में 126 बच्चे इस बुखार से दम तोड़ चुके थे। उन्हीं अस्पतालों में जहाँ उनके ग़रीब माँ-बाप उनकी ज़िन्दगी बचाने की आस लेकर आये थे। मौत का ताण्डव उसके बाद भी जारी रहा। और उन लोगों की शर्मनाक हरकतें भी जारी रहीं जिन पर इन बच्चों को बचाने की ज़िम्मेदारी थी। मुज़फ़्फ़रपुर में हो रही प्रेस कॉन्फ्रेंस में बिहार का स्वास्थ्य मंत्री मैच का स्कोर पूछ रहा था, केन्द्रीय स्वास्थ्य राज्य मंत्री सो रहा था और केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री बेशर्मी से उन्हीं वादों को दोहरा रहा था जो वह पाँच वर्ष पहले हुई ऐसी मौतों के समय मुज़फ़्फ़रपुर की जनता से करके गया था। ज़िले का सांसद जुमलेबाज़ प्रधानमंत्री की तर्ज़ पर शब्दों का खेल खेलते हुए इन मौतों के लिए 4जी (गाँव, गर्मी, ग़रीबी और गन्दगी) को दोष देकर सरकार की ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ चुका था।

यह एक और सामूहिक हत्याकाण्ड था। "विकास पुरुष" मोदी और "सुशासन बाबू" नीतीश कुमार की सरकारों की देखरेख में हुआ ग़रीब बच्चों का हत्याकाण्ड!

यूरोप का कोई देश होता तो इतनी बड़ी घटना पर सरकार गिर गयी होती। लेकिन हमारा समाज जड़ता और असंवेदनशीलता की ऐसी शर्मनाक और डरावनी हालत में पहुँचा दिया गया है कि ऐसे झकझोर देने वाले मामलों पर भी न तो कोई आन्दोलन खड़ा होता है और न ही सरकारों को कठघरे में खड़ा किया जाता है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री डॉ. हर्षवर्धन 2014 में 200 से अधिक बच्चों की मौत के बाद मुज़फ़्फ़रपुर मेडिकल कॉलेज गये थे और कई घोषणाएँ कर आये थे। 2014 में हर्षवर्धन ने कहा था कि 100 फ़ीसदी टीकाकरण होना चाहिए, कोई बच्चा टीकाकरण से नहीं छूटना चाहिए. जल्दी ही यहाँ 100 बिस्तरों वाला बच्चों का अस्पताल बनाया जायेगा, आदि-आदि। मोदी ने 2014 में इन्सेफ़लाइटिस से मरने वाले बच्चों के लिए रुआँसे गले से शोक प्रकट किया था और सत्ता में आने पर सब ठीक करने का सपना दिखाया था। मगर इन पाँच सालों में जब देश का जीडीपी कुलाँचे भर रहा था और जनता को देश के महाशक्ति बनने के सपने दिखाये जा रहे थे, तब केन्द्र और राज्य की सरकारों ने मुज़फ़्फ़रपुर को लेकर ऐसा कुछ भी नहीं किया जो बच्चों को मौत के मुँह में जाने से रोक सके।

इतने बड़े पैमाने पर बच्चों की मौत की यह पहली घटना नहीं है। अगस्त-सितम्बर 2017 में गोरखपुर में तीन सौ से भी ज़्यादा बच्चों ने इन्सेफ़्लाइटिस से दम तोड़ दिया था। करीब 100 बच्चों की मौत दो ही दिनों में सिर्फ़ इसलिए हो गयी थी क्योंकि भुगतान नहीं करने के कारण मेडिकल कॉलेज को ऑक्सीजन की सप्लाई बन्द कर दी गयी थी। वह भी

(पेज 6 पर जारी)

पश्चिम बंगाल में भाजपा की सफलता और संसदीय वाम राजनीति के कुकर्म

(पेज 13 से आगे)

बमबारी हुई जिसके कारण 13 मई को पूरा दिन और 14 मई को दोपहर 12 बजे तक सियालदह लाइन की ट्रेनें ठप्प रहीं। हिन्दू-मुसलमान के नाम पर दंगे भड़काये गये। कुछ झुण्ड हिन्दुओं के घरों में जाकर लूट-पाट मचाते तो दूसरी तरफ़ कुछ झुण्ड यही काम मुसलमानों के घरों में जाकर करते। इन घटनाओं में एक महिला की मौत हो गयी और कई घायल हुए। सैकड़ों लोगों को इलाक़ा छोड़कर दूसरी जगहों पर जाना पड़ा।

कहने को माकपा एक कैडर-आधारित पार्टी है लेकिन बंगाल में लम्बे समय तक केवल सरकार चलाते रहने से इसका कैडर वैचारिक रूप से खोखला, कायर और पलीद हो चुका था। एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा ऐसे कैडर का भी था जो सत्ता की मलाई चाटने और पार्टी के नाम पर तमाम तरह की वसूली और दूसरे धन्धों में लगा हुआ था। यही वजह थी कि 2011 में ममता बनर्जी के सत्ता में आने के बाद बड़ी संख्या में माकपा के निचले और मँझोले स्तर के कार्यकर्ता तृणमूल में चले गये। जो पार्टी के साथ बचे रह गये थे, वे लगातार तृणमूल के हमलों और दबाव का सामना कर रहे थे। तृणमूल सरकार की नाकामियों और अत्याचार के ख़िलाफ़ कोई जुझारू आन्दोलन खड़ा करना तो दूर, सत्ता से बाहर होते ही माकपा अपने कार्यकर्ताओं और कार्यालयों का बचाव करने लायक़ भी नहीं रह गयी थी। राज्य में भाजपा की ताक़त बढ़ने के साथ ही भारी संख्या में माकपा के कार्यकर्ताओं और समर्थकों ने तृणमूल को बाहर करने के लिए भाजपा का दामन पकड़ लिया। ऐसा सिर्फ़ इसी बार नहीं हुआ है। बंगाल में स्थानीय निकायों के चुनावों में भी यह बात देखने में आयी थी। कुछ लोगों का कहना है कि ग्रामीण इलाक़ों में माकपा के निचले स्तर के कार्यकर्ताओं और समर्थकों के एक बड़े हिस्से ने तो माकपा के सांगठनिक ढाँचे के बिखराव और नेतृत्व की कायरता के कारण अपने बचाव के लिए स्थानीय तौर पर भगवा गुटों का समर्थन करना शुरू कर दिया। लेकिन बात इतनी ही नहीं है। इतने लम्बे समय तक राज्य में सत्ता में रहने के बावजूद माकपा ने अपने कार्यकर्ताओं और समर्थकों के बीच वैचारिक-सांस्कृतिक काम नहीं के बराबर किया था। सच तो यह है कि वाम समर्थकों का अच्छा-ख़ासा हिस्सा भी भाजपा के साम्प्रदायिक प्रचार के प्रभाव में आ चुका है। शहरी भद्रलोक वाम समर्थकों का पाला बदलना और कैसे समझा जा सकता है, जिन्हें अपने बचाव के लिए ऐसा करने की कोई ज़रूरत नहीं थी।

भाजपा अपने निरन्तर प्रचार और कार्यकर्ताओं के दम पर तृणमूल सरकार के कामकाज से उपजे जन-असन्तोष को अपने ढंग से भुनाने में सफल रही और लगातार बढ़ती संख्या में युवाओं को गोलबन्द करती रही, जबकि तीन दशकों तक प्रदेश में राज करने के बाद भी वाम पार्टियाँ मैदान से ग़ायब रहीं। अपने समर्थकों को जुटाकर कोलकाता में साल-दो साल में एकाध रैलियाँ कर देने के अलावा ये पार्टियाँ तृणमूल सरकार के तमाम जनविरोधी कामों और उसकी गुण्डागर्दी व भ्रष्टाचार के विरुद्ध कोई आन्दोलन नहीं खड़ा कर सकीं। भाजपा और संघ के हिन्दुत्ववादी प्रचार ने बंगाल में फैली बेरोज़गारी और आर्थिक बदहाली को ममता बनर्जी के "मुस्लिम तुष्टिकरण" से जोड़कर एक ओर निचले तबक़ों में यह भ्रम फैलाया कि उनकी समस्याओं का कारण यह है कि सारा फ़ायदा मुसलमानों को चला जा रहा है, और दूसरी ओर सवर्ण हिन्दुओं के बड़े हिस्से को उनकी सामाजिक हैसियत खोने का भय दिखाकर अपनी ओर किया। लेकिन वाम पार्टियाँ न तो इस झूठे प्रचार की काट कर सकीं और न ही बंगाल की जनता के वास्तविक मुद्दों को सामने ला सकीं। शायद उनके अन्दर ऐसा करने का नैतिक साहस भी नहीं रह गया है क्योंकि आज बंगाल की जनता जिन समस्याओं से जूझ रही है – ग़रीबी-बदहाली, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, गुण्डागर्दी – ये सब तो वाम मोर्चा के शासन काल से ही चली आ रही हैं। ऐसे में भाजपा के लिए अपना घनघोर साम्प्रदायिक प्रचार चलाना और ध्रुवीकरण करना और भी आसान हो गया।

संसदीय वामपन्थियों की लम्बी अकर्मण्यता, यथास्थितिवाद और गलीज़ सामाजिक जनवादी राजनीति के कुकर्मों का ही यह फल है कि बंगाल में पहले ममता बनर्जी जैसी घोर जनविरोधी और निरंकुश सरकार आयी और अब फ़ासिस्टों को वहाँ ऐसी सफलता मिली है। त्रिपुरा और पूरे देश की ही तरह बंगाल में भी संसदीय वाम राजनीति की परिणतियाँ उजागर होकर सामने आयी हैं। यह बात एक बार फिर साफ़ हुई है कि क्रान्तिकारी वाम राजनीति के पुनरुत्थान के बिना और सभी मेहनतकश वर्गों का एक जुझारू सामाजिक आन्दोलन खडा किये बिना, और सड़कों पर मोर्चा लेने की एक लम्बी तैयारी किये बिना फ़ासिस्टों को पीछे क़तई नहीं धकेला जा सकता।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

पूँजीपतियों के पास दर्जनों अख़बार और टीवी चैनल हैं। मज़दूरों के पास है उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'! इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:

डाक से भेजने का पता: **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता: **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं : www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 8853093555, 9936650658
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

चुनाव ख़त्म, मज़दूरों की छँटनी शुरू

"मज़दूर नं. 1" की सरकार दोबारा बनते ही बड़े पैमाने पर मज़दूरों की छँटनी का सिलसिला शुरू हो गया है। अर्थव्यवस्था का संकट जिस क़दर गहरा है, उसे देखते हुए यह तय लग रहा है कि आने वाले समय में छँटनी की तलवार मज़दूरों की और भी बड़ी आबादी पर गिरेगी। मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से सारी कम्पनियाँ अपनी लागत घटाने के दबाव में हैं, और ज़ाहिर है कि इसका सबसे आसान तरीक़ा है मज़दूरी पर ख़र्च होने वाली लागत में कटौती करना। किसी एकताबद्ध और जुझारू मज़दूर आन्दोलन के अभाव में पूँजीपतियों के लिए ऐसा करना बेहद आसान हो गया है। जब चाहे मज़दूरों को निकाल बाहर करने के उनके "अधिकार" के रास्ते से हर बाधा को हटाने में सरकारें पूरी मुस्तैदी से जुटी हुई हैं। जब बाज़ार में माँग हो तब मनचाहे तरीक़े से मज़दूरों को काम पर रखो, और जब माँग घटने लगे तब मनमाने तरीक़े से मज़दूरों की छुट्टी कर दो। इसे ही कहते हैं 'हायर एण्ड फ़ायर' की नीति जिसे सुगम बनाने में पिछली तमाम सरकारें लगी रही हैं। मोदी सरकार ने इसके लिए रही-सही क़ानूनी अड़चनों को भी ख़त्म कर दिया है।

चुनाव के तुरन्त बाद रिलायंस जियो और बीएसएनएल, यानी देश की सबसे बड़ी निजी टेलीकॉम कम्पनी और सबसे बड़ी सरकारी टेलीकॉम कम्पनी ने हज़ारों मज़दूरों को सड़क पर धकेलकर इसकी शुरुआत कर दी है। इसके अलावा, देश की सबसे बड़ी कार कम्पनी मारुति और उसकी वेण्डर कम्पनियों में भी छँटनी चालू हो गयी है।

रिलायंस जियो ने 5000 को निकाला

मोदी के मालिक नं. 1 मुकेश अम्बानी की कम्पनी जियो ने एक झटके में अपने 5,000 कर्मचारियों को बाहर कर दिया है जिनमें करीब 600 परमानेण्ट और बाक़ी कॉण्ट्रैक्ट पर थे। इनमें दफ़्तर के कर्मचारियों से लेकर तकनीकी कर्मचारी तक शामिल हैं। जियो के कर्मचारियों का कहना है कि मैनेजरों को हर जगह कर्मचारियों की संख्या कम करने के लिए कह दिया गया है। यानी छँटनी की यह मार अभी रुकने वाली नहीं है।

जियो में लगभग 20,000 कर्मचारी काम करते हैं। इसके अलावा इससे बहुत बड़ी संख्या ऐसे कामगारों की है जो काम तो जियो के लिए करते हैं लेकिन वे थर्ड-पार्टी यानी किसी और कम्पनी के कर्मचारी हैं जिसका जियो के साथ कॉण्ट्रैक्ट है। सभी कम्पनियों की तरह अब टेलीकॉम में भी कुल पूँजी का बेहद छोटा हिस्सा मज़दूरों पर ख़र्च होता है। माना जाता है कि टेलीकॉम कम्पनियों में 5-6 प्रतिशत लागत कर्मचारियों पर ख़र्च होती है लेकिन संकट आते ही सबसे पहले इसी पर कुल्हाड़ा चलाया जाता है। लाखों-करोड़ों में तनख़्वाहें उठाने वाले ऊँचे अफ़सरों के वेतन में या अम्बानी और लग्गू-भग्गुओं की आलीशान ज़िन्दगी में कोई कमी नहीं आती। नीता अम्बानी अब भी रोज़ सुबह ढाई लाख रुपये की चाय सुड़कती होगी, भले ही जियो के हज़ारों कर्मचारियों के घरों में चूल्हा जलना बन्द हो जाये।

सितम्बर 2016 में प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी की फ़ोटो वाले विज्ञापनों के साथ बाज़ार में उतरने वाली जियो ने सरकारी कृपा से भारी डिस्काउण्ट वाली दरों के चलते बाज़ार के बड़े हिस्से पर क़ब्ज़ा कर लिया और तीन साल से भी कम समय में 30 करोड़ से ज़्यादा ग्राहक बना लिये। टेलीकॉम बाज़ार के 31 प्रतिशत हिस्से पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया है और पिछले वित्तीय वर्ष की चौथी तिमाही में इसने 840 करोड़ रुपये का मुनाफ़ा कमाया जबकि वोडाफ़ोन और एअरटेल जैसी कम्पनियाँ भारी घाटे में हैं।

हालाँकि पूँजीवादी खेल के नियम ऐसे हैं और उसमें इतना झूठ-फ़रेब और परदेदारी है कि सच का पता लगाना बहुत मुश्किल होता है। जैसे, जियो के मुनाफ़े के दावों को ही ले लीजिए। एक तरफ़ यह कम्पनी सैकड़ों करोड़ का मुनाफ़ा पीट रही है, दूसरी तरफ़ 31 मार्च 2019 तक इस पर कुल क़र्ज़ बढ़कर 67,000 करोड़ हो गया था। पर निश्चिन्त रहिए, जियो के फ़्री डेटा के चक्कर में अपनी सुधबुध खो बैठे देशवासियों से ही इसकी भी वसूली होगी।

बीएसएनएल के 30 प्रतिशत ठेका कर्मचारियों को निकालने का फ़रमान जारी

लोकसभा चुनाव के दौरान ही यह ख़बर आयी थी कि मोदी सरकार की उपेक्षा और बदइन्तज़ामी के कारण घाटा झेल रहे बीएसएनएल के 56,000 कर्मचारी निकाले जायेंगे। चुनाव में मोदी की छवि पर कोई आँच न आये, इसलिए ख़बर दबा दी गयी। लेकिन चुनाव नतीजे आने के दो हफ़्ते के भीतर यह आदेश आ गया कि बीएसएनएल के सभी सर्कलों से 30 प्रतिशत ठेका कर्मियों को निकाल बाहर किया जाये। ऐसे कर्मचारियों की संख्या हज़ारों में है। सभी जानते हैं कि पिछले तीन दशकों के दौरान प्राइवेट कम्पनियों में ही नहीं, सरकारी कम्पनियों और विभागों में भी बड़े पैमाने पर ठेकाकरण हुआ है और तकनीकी कामों से लेकर दफ़्तरी कामों तक में नयी स्थायी भर्तियाँ नाममात्र की हुई हैं। ज़्यादा से ज़्यादा काम ठेका और कैज़ुअल कर्मियों से कराया जा रहा है। अब छँटनी की गाज भी सबसे पहले इन्हीं पर गिर रही है। हालाँकि स्थायी कर्मचारी भी बहुत निश्चिन्त न रहें। मोदी सरकार बीएसएनएल में वीआरएस लेकर आ रही है और अच्छी-ख़ासी संख्या में पुराने कर्मियों को रिटायरमेण्ट की पर्ची पकड़ाकर बाहर का रास्ता दिखाया जाने वाला है। बीएसएनएल यूनियन के मुताबिक़ यह निजीकरण की दिशा में एक क़दम है।

जिन कॉण्ट्रैक्ट कर्मियों को बाहर किया जा रहा है उन्हें महीनों से तनख़्वाह भी नहीं मिली है। पूरे देश में लगभग पाँच महीने से कॉण्ट्रैक्ट कर्मियों का वेतन भुगतान रुका है। पश्चिम उत्तर प्रदेश सर्कल में 10-11 महीने से और पूर्वी उत्तर प्रदेश सर्कल में तो एक साल से उन्हें वेतन नहीं मिला है। ये ठेका कर्मचारी विभिन्न ठेका कम्पनियों और छोटे ठेकेदारों के ज़रिये काम पर रखे जाते हैं। लेकिन इन्हें वेतन और अन्य भत्ते आदि बीएसएनएल ही देती रही है। लेकिन पिछले कई महीनों से मैनेजमेण्ट कॉण्ट्रैक्टरों से कह रहा है कि वित्तीय संकट के कारण उसके पास पैसे ही नहीं हैं। नये टेण्डर नहीं दिये जा रहे हैं। जो काम चल रहे हैं, उनके पूरा होते ही उन पर काम कर रहे मज़दूरों की भी छुट्टी कर दी जायेगी।

मोदी सरकार एक तरफ़ जियो के लिए तोहफ़े पर तोहफ़े लुटाये जा रही है – कई राज्यों में बाक़ायदा सरकारी आदेश जारी करके सरकारी कर्मचारियों से कहा गया है कि उनको जियो का ही कनेक्शन लेना है – दूसरी ओर बीएसएनएल का दाना-पानी बन्द करके उसे मौत की नींद सुलाया जा रहा है ताकि बाद में

(पेज 6 पर जारी)

सरकारी रिपोर्ट से भी उजागर हुए लगातार ख़राब होते मज़दूरों के हालात

– सुरेश चौहान

शोषण और मुनाफ़े पर टिकी इस व्यवस्था, जिसमें मज़दूर और मेहनतकश आबादी हमेशा बदहाल ही होती है, की असलियत आये दिन हमारे सामने आती रहती है। हाल ही में आयी केन्द्र सरकार की एक रिपोर्ट 'पीरियॉडिक लेबर फ़ोर्स सर्वे' (पी.एल.एफ़.एस.) भारत में मज़दूरों की स्थिति की भयानक तस्वीर पेश कर रही है। इस सरकारी रिपोर्ट के मुताबिक़ ज़्यादातर कामगार न्यूनतम स्वीकृत मानकों के आधे से भी कम कमा पाते हैं, 71 प्रतिशत बिना किसी लिखित कॉण्ट्रैक्ट के काम करते हैं, 54 प्रतिशत को भुगतान सहित छुट्टी नहीं मिलती है और ग्रामीण क्षेत्रों में 57 प्रतिशत से अधिक और शहरों में करीब 80 प्रतिशत कामगार आठ घण्टे काम के दिन (सप्ताह में 48 घण्टे) से बहुत अधिक काम करते हैं।

हालाँकि सरकारी आँकड़े पूरी सच्चाई सामने नहीं लाते और ज़मीनी अनुभव बताते हैं कि हालात वास्तव में इससे ज़्यादा ख़राब हैं, फिर भी ख़ुद को "मज़दूर नं. 1" घोषित करने वाले प्रधानमन्त्री की सरकार जब ख़ुद ऐसे आँकड़े जारी करे तो समझा जा सकता है कि स्थिति कितनी गम्भीर है।

इस रिपोर्ट में मज़दूरों की कमाई, काम के घण्टे और मज़दूर अधिकारों एवं सामाजिक सुरक्षा के बारे में कुछ तथ्य और आँकड़े पेश किये गये हैं। यह रिपोर्ट 'नैशनल सैम्पल सर्वे ऑर्गेनाइज़ेशन' द्वारा जून 2017 से जुलाई 2018 के बीच में 1 लाख घरों (4.33 लाख लोगों) में किये गये सर्वेक्षण पर आधारित है। जहाँ एक ओर महँगाई लगातार आसमान छू रही है, वहीं दूसरी ओर मज़दूरों और छोटे-मोटे काम करके गुज़ारा करने वाले लोगों की कमाई ख़ुद सरकार के बनाये न्यूनतम मानकों से बेहद कम है। सातवें वेतन आयोग के अनुसार चार सदस्यों वाले एक परिवार की न्यूनतम आय 18,000 होनी चाहिए (इस आयोग की रिपोर्ट चार साल पहले आयी थी, तब से महँगाई बहुत बढ़ चुकी है)। लेकिन स्थिति यह है कि गाँवों और शहरों में ख़ुद के छोटे जोत वाले और शहरों में फुटकर काम करने या छोटी-मोटी दुकान चलाने वालों की औसत आय क्रमशः 8430 रुपये और 14792 रुपये, नियमित काम करने वालों कामगारों की औसत आय 12642 रुपये (देहात) और 17213 रुपये (शहर) है, तो वहीं अनियमित/कैज़ुअल मज़दूरों की औसत आय देहात में 7395 रुपये और शहरों में 9105 रुपये है।

हालाँकि रिपोर्ट के कुछ आँकड़ों में झोल है। इसके मुताबिक़ 52 प्रतिशत से ज़्यादा कामगार "स्व-रोज़गार" करते हैं। इनमें गाँवों में छोटी किसानी वालों को भी शामिल किया गया है। हम जानते हैं कि बहुत बड़ी संख्या आज ऐसे लोगों की है जिनका परिवार गाँव में ज़मीन के छोटे से टुकड़े पर खेती करता है लेकिन उनका गुज़ारा मुख्य रूप से देहात या शहर में मज़दूरी करने वाले परिवार के सदस्य की कमाई से होता है। यानी, इस तथाकथित "स्व-रोज़गार" वाली आबादी का भी बड़ा हिस्सा मज़दूरी पर ही जीता है। दूसरे, इसमें करीब 24 प्रतिशत मज़दूरों को कैज़ुअल/दिहाड़ी पर खटने वाला बताया गया है, और 23 प्रतिशत नियमित कर्मचारी बताये गये हैं। वर्ष 2006 में आयी अर्जुन सेनगुप्ता कमेटी की रिपोर्ट ने लम्बी जाँच-पड़ताल के बाद बताया था कि करीब 93 प्रतिशत कामगार अनियमित, कैज़ुअल या दिहाड़ी पर काम करते हैं। उसके बाद से स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ी ही है। न केवल कारख़ानों में, बल्कि बैंकों, रेलवे और सरकारी विभागों तक में स्थायी कर्मचारी कम किये जा रहे हैं और ठेका और दिहाड़ी पर ज़्यादा से ज़्यादा से काम कराये जा रहे हैं।

इसके अलावा, ख़ासकर शहरी इलाक़ों में, ऐसे कर्मचारी और "स्व-रोज़गार" वाले भी सैम्पल में शामिल हैं जिनकी आमदनी औसत से कई गुना ज़्यादा है। अगर इनको शामिल करने के बाद भी औसत आमदनी इतनी कम है तो ज़ाहिर है कि एक बहुत बड़ी आबादी ऐसे कामगारों की है, जो इस औसत से भी बहुत कम कमा पाते हैं।

ये आँकड़े दिखाते हैं कि आज, जब बेरोज़गारी नये-नये रिकॉर्ड बना रही है और शिक्षा से लेकर स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं को भी निजी हाथों में सौंपा जा रहा है, तो जिनके पास कुछ काम है भी, वे कितनी किल्लत की ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं। इतनी आय में आज कोई बच्चा ढंग के स्कूल में जाकर शिक्षा नहीं हासिल कर सकता और यदि परिवार के किसी सदस्य को कोई बीमारी हो जाये तो सभी की हालत अधिक ख़स्ता हो जाती है। तस्वीर और भयावह हो जाती है जब आगे यह पता चलता है कि यह ज़रूरी नहीं कि यह आय 8 घण्टे प्रतिदिन काम के आधार पर ही हो। आज श्रम की उत्पादकता इतनी बढ़ चुकी है कि जितना काम आज से 70-80 साल पहले 8 घण्टे में होता था, वह आज डेढ़-दो घण्टे में ही हो जाता है। लेकिन इस तकनीकी प्रगति का लाभ इस व्यवस्था में ऊपर बैठे पूँजीपतियों और सम्पत्तिधारियों के मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए ही किया गया है; मज़दूरों की हालत तो बस बद से बदतर ही हुई है।

रिपोर्ट के अनुसार गाँवों में 57% और शहरों में 79% मज़दूर आठ घण्टों से अधिक खटते हैं, और इसके बावजूद बमुश्किल जीने भर जितना कमा पाते हैं। इसमें ज़्यादातर को ओवरटाइम की अतिरिक्त मज़दूरी नहीं मिलती, या अगर मिलती भी है तो नियम के अनुसार दोगुने के बजाय सामान्य दर पर ही मिलती है।

रिपोर्ट का अगला हिस्सा बताता है कि 71.1% मज़दूरों के पास कोई लिखित अनुबन्ध या नियुक्ति पत्र नहीं है, जिसका मतलब है कि उन्हें कभी भी नौकरी से निकाला जा सकता है। यह हाल तथाकथित 'नियमित' कर्मचारियों का है, और जो अनियमित या कैज़ुअल हैं, उनकी स्थिति तो और अधिक भयानक है। 54.2% को वैतनिक अवकाश नहीं मिलता है, जिसका मतलब है कि उन्हें पूरे महीने बिना किसी छुट्टी के काम करना होगा वरना वेतन के साथ नौकरी से भी हाथ गँवा सकते हैं। 49.6% को किसी भी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा के लाभ प्राप्त नहीं हैं, चाहे वह पी.एफ़. हो, बीमा हो, या पेंशन हो। यह रिपोर्ट फिर एक बार उजागर करती है कि समाज के वे लोग जो सुई से लेकर जहाज़ तक बनाते हैं और जिनकी मेहनत के बूते समाज चलता है उनका अपना जीवन किस अँधेरे में है। वे आज के इस आधुनिक युग में भी किस तरह जानवरों की-सी ज़िन्दगी गुज़ारने को मजबूर हैं, जिसमें दिन-रात खटने के बाद भी बिना किसी अधिकार और सुरक्षा के इन्सानों की बुनियादी सुविधाएँ भी हासिल नहीं कर पाते। जबकि इनकी मेहनत से पैदा हुई सम्पदा के अकूत भण्डार से मुट्ठीभर लोग ऐशो-आराम-विलासिता की ज़िन्दगी जीते हैं।

अम्बेडकरनगर के ईंट-भट्ठों में भयंकर शोषण-उत्पीड़न के शिकार मज़दूर

अम्बेडकरनगर ज़िले के थानाक्षेत्र राजेसुल्तानपुर के आस पास सैकड़ों की संख्या में तथा ज़िले में हज़ारों की संख्या में ईंट-भट्ठे के उद्योग हैं। इन ईंट-भट्ठों पर काम करने वाले बहुत से मज़दूर बाहर से छत्तीसगढ़, उड़ीसा, झारखण्ड, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के अन्य ज़िलों रायबरेली, पीलीभीत से अपने पूरे परिवार सहित काम के लिए आते हैं। आसपास के गाँवों के भी बहुत से लोग इन ईंट-भट्ठों पर काम करते हैं।

इन ईंट-भट्ठों पर कई तरीक़े के काम होते है। अलग-अलग कामों के लिए अलग-अलग मज़दूर होते हैं। इन ईंट-भट्ठों पर कोई भी नियम-क़ानून लागू नहीं होता है। हर नियम-क़ानून को ताक पर रखकर इन मज़दूरों से ज़्यादा-से-ज़्यादा काम करवाया जाता है। मज़दूरों का शोषण किया जाता है। ईंट-भट्ठों पर धूल-मिट्टी-गर्दा का ज़्यादा काम होता है लेकिन मुँह पर लगाने के लिए मास्क आदि कोई सुरक्षा उपकरण नहीं दिया जाता। जिससे धूल और मिट्टी सीधे मज़दूरों के मुँह में जाती है। बहुत सारे मज़दूर टीवी और दमा रोग के शिकार हो जाते हैं और दवा इलाज के अभाव में दम तोड़ देते हैं। चिमनी के पास ईंट पकाने के लिए कोयला डाला जाता है और वहाँ तापमान बहुत ज़्यादा होता है। लेकिन सुरक्षा के नाम पर वहाँ भी कुछ नहीं होता। न तो हाथ में पहनने के दस्ताने दिये जाते हैं और न ही पैर में पहनने के लिए भी कुछ दिया जाता है। आये दिन दुर्घटनाओं की वजह से मज़दूर जलकर मर जाते हैं। जिनकी खोज-ख़बर लेने वाला कोई भी नहीं होता है। अगर कोई मज़दूर ईंट-भट्ठे पर काम करते समय घायल हो जाता है तो मालिक केवल उनको घर तक पहुँचा देता है। उनको दवा-इलाज के लिए पैसा तक नहीं मिलता है। चाहे वह मार्च, अप्रैल, मई, जून की चिलचिलाती धूप और भयंकर गर्मी हो या दिसम्बर, जनवरी, फ़रवरी महीने की कड़कड़ाती ठण्ड हो; मज़दूर अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ काम करते रहते हैं। 6 से 20 वर्ष तक के तमाम बच्चे-बच्चियाँ भी पढ़ाई-लिखाई छोड़कर यहाँ पर काम करते हैं। महिलाएँ, वृद्ध, बच्चे नौजवान तमाम लोग इन जगहों पर अधिक संख्या में काम करते हैं।

नियम तो यह है कि जहाँ पर धूल-मिट्टी का ज़्यादा काम होता है, वहाँ पर काम के बाद गुड़ और दूध का इन्तज़ाम किया जाना चाहिए। लेकिन गुड़ और दूध की तो बात छोड़िए पीने के लिए शुद्ध पानी तक नहीं मिलता है। मज़दूर कह रहे थे कि हम लोगों को काफ़ी कष्ट झेलना पड़ता है, लेकिन कोई यूनियन भी नहीं है जो हम लोगों की समस्याओं को उठा सके। सर्दियों के दिनों में बहुत सारे बच्चों के पास पहनने के लिए कपड़े तक नहीं होते हैं। गर्मी के दोपहर में भी जब भयंकर गर्मी पड़ती है तब भी लोग एस्बेस्टस (करकट) की छतों वाले घर में रहते हैं। नौजवान भारत सभा की अम्बेडकर नगर टीम ने ईंट-भट्ठों पर बच्चों को पढ़ाने की बात की तो लोगों ने कहा कि काम के समय बिल्कुल भी समय नहीं मिल पाता है, इसलिए हम अभी बच्चों को पढ़ाने के बारे में सोच भी नहीं सकते, अबकी बार नहीं अगर अगली बार यहाँ आयेंगे तो बच्चे ज़रूर पढ़ेंगे।

बड़ी-बड़ी इमारतें, मन्दिर-मस्जिद आदि जिन ईंटों से मिलकर बनती हैं, उनको बनाने वाले मज़दूर बहुत ही नारकीय परिस्थितियों में अपनी ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। ईंट-भट्ठों पर काम करने वालों के लिए कोई भी नियम-क़ानून नहीं है ना ही काम के घण्टे निर्धारित हैं, ना ही कोई श्रम क़ानून लागू होता है। बेहद कम मज़दूरी पर ज़्यादा से ज़्यादा काम करवाया जाता है। रहने की व्यवस्था इस तरह से होती है कि इंसान तो क्या जानवर भी उसमें ना रह सके।

ईंट-भट्ठों पर काम करने वाले मज़दूरों की मज़दूरी और काम की स्थिति के बारे में -

1. कच्ची ईंट पाथने या बनाने वाले मज़दूर, जिनको पथेरा कहा जाता है, इनको 1,000 कच्ची ईंट पाथने पर 600 मिलता है। जो मज़दूर बाहर से पथाई के लिए आते हैं उनको 1,000 पर 525 या 550 रुपये मिलता है। जब उनसे पूछा गया कि ये अन्तर क्यों है तो उन्होंने बताया कि कई बार मालिक काम करवाने के बाद पैसा ही नहीं देता इसलिए हम ठेकेदार के माध्यम से आते हैं। हम लोग दूर से काम करने के लिए आते हैं अगर मालिक पैसा नहीं दिया तो हम लोग कुछ भी नहीं कर सकते हैं। इसलिए मजबूरन हमें कम मज़दूरी पर काम करना पड़ता है। ईंट पाथने के लिए सर्वप्रथम मिट्टी को भिगोकर उसको फावड़े में मिलाकरके मिट्टी तैयार की जाती है। इसके बाद ईंट बनायी जाती है। इस काम में छोटे-छोटे बच्चों समेत पूरा परिवार हाड़-तोड़ मेहनत करता है। सुबह 3:00 या 4:00 बजे से लेकर दोपहर तक उसके बाद शाम को और देर रात तक काम करते रहते हैं। औसतन एक व्यक्ति लगभग 700 या 800 ईंट ही बना पाता है। काम करने की वजह से छोटे बच्चे-बच्चियाँ स्कूल तक नहीं जा पाते हैं। 12 से 15 घण्टे कड़ी मेहनत से काम करने के बाद मुश्किल से 250 या 300 रुपये का एक दिन में काम कर पाते हैं।

2. कच्ची ईंट बनाने के बाद उसको चिमनी में पकाने के लिए मज़दूर इसको ढोकर करके चिमनी तक ले जाते हैं। उनको 1,000 ईंट ढोने पर 180, 190 या 240 रुपये तक मिलते हैं। सुबह 3 या 4 बजे से दोपहर 2 या 3 बजे तक काम करना पड़ता है। उनको भी एक वर्ष में 6 महीने काम मिलता है।

3. चिमनी में ईंट जमाने वाले मज़दूरों को बेलदार कहा जाता है। इन 3 या 4 लोगों का काम कच्ची ईंटों को चिमनी के अन्दर व्यवस्थित करना होता है। इनको भी 10 या 11 घण्टे काम करना होता है, इसके बदले में 11,000 या 12,000 रुपये महीने मिलता है। इनको काम के दौरान काफ़ी धूल का सामना करना पड़ता है। लेकिन सुरक्षा के नाम पर दस्ताने-चश्मा-मास्क आदि कुछ भी नहीं दिया जाता है।

4. कोयला फोड़ने वाले मज़दूरों को 1 घण्टे कोयला फोड़ने पर 100 रुपये दिया जाता है।

5. कोयला ढोने वाले मज़दूर कोयले को चिमनी तक पहुँचाने का काम करते हैं। इनको 10,000 या 11,000 रुपये महीने का दिया जाता है।

6. ईंट को पकाने के लिए चिमनी में कोयला डालने वाले मज़दूर, जिनको झुकवा बोला जाता है, यहाँ 4 या 5 मज़दूर दो या तीन शिफ़्ट में काम करते हैं, क्योंकि कोयला डालने का काम लगातार होता है। सुरक्षा के नाम पर इन्हें भी कुछ मुहैया नहीं करवाया जाता है। गर्मी में दोपहर में भी चिमनी के ऊपर रहकर उनको काम करना पड़ता है। जहाँ नीचे से काफ़ी गर्मी होती है। कई बार रात में नींद की वजह से मज़दूर चिमनी में गिर जाते हैं जिससे मज़दूर घायल होते और मरते रहते हैं। इनका वेतन भी हर महीने 12,000 से 13,000 तक होता है।

7. जब ईंट-भट्ठे में ईंट पककर तैयार हो जाती है तो उसको बाहर निकालकर चट्टा लगाया जाता है। चिमनी से ईंट बाहर निकालने के लिए 1,000 ईंट पर 130 से लेकर 150 रुपये तक दिये जाते हैं। इसमें भी इतने भयंकर तरीक़े से काम करवाया जाता है कि हमेशा जान का ख़तरा रहता है। इनको भी सुरक्षा के नाम पर कुछ भी नहीं दिया जाता है।

8. राबिश डालने और उसको निकालने वाले मज़दूरों को दिहाड़ी 300 या 350 रुपये तक प्रतिदिन के हिसाब से दिया जाता है।

9. ट्रक से कोयला उतारने वाले मज़दूर को एक ट्रक उतारने का 1,000 या 700 से 800 रुपये तक दिया जाता है।

10. ईंट जब पककर तैयार हो जाती है, तब उसको घर बनाने या अन्य कामों के लिए ट्राली द्वारा पहुँचाने के लिए ट्राली पर लादने और उतारने के लिए 150 रुपये ही मिलता है, चाहे उस काम को एक व्यक्ति करे या कई लोग मिलकर, लेकिन उसके बदले उतना ही मिलता है।

– मित्रसेन

पूँजीपतियों को रिझाने के लिए रहे-सहे श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाने की तैयारी

(पेज 5 से आगे)

कर दिया था। इसके पीछे तर्क यह दिया गया कि इससे महिला कर्मचारियों के हाथ में अधिक तनख़्वाह आयेगी। परन्तु दूरगामी तौर पर देखा जाये तो यह महिला कर्मचारियों के ख़िलाफ़ ही जायेगा क्योंकि वृद्धावस्था में उनकी पुरुषों पर निर्भरता को बढ़ायेगा। यही नहीं मसौदा विधेयक में महिला कर्मचारियों की मातृत्व अवकाश व शिशु को दूध पिलाने जैसी अहम सुविधाओं को भी अनिवार्य नहीं बनाया गया है जो उत्पादन के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी को हतोत्साहित करेगा।

केन्द्र के अतिरिक्त राज्यों में भी भाजपा के शासन वाली कई सरकारों ने भी हाल के वर्षों में श्रम क़ानूनों को पूँजीपतियों के पक्ष में लचीला बनाया है। मिसाल के लिए अगस्त 2014 में राजस्थान की वसुन्धरा राजे सरकार ने चार श्रम क़ानूनों में अहम बदलाव किये जिसके तहत कम्पनियों को 300 कर्मचारियों को बिना सरकार की अनुमति के निकाल देने का अधिकार दे दिया गया। पहले यह सीमा 100 थी। इसके अतिरिक्त प्रमुख नियोक्ता को बिना लाइसेंस के 49 मज़दूरों तक को ठेके पर रखने का अधिकार दे दिया गया। इसी प्रकार गुजरात और मध्य प्रदेश की भाजपा सरकारों ने अपने-अपने राज्य में श्रम क़ानूनों में भारी फेरबदल किये थे।

श्रम क़ानूनों को धीरे-धीरे कमज़ोर बनाने का काम तो कांग्रेस भी उदारीकरण की नीतियों को लागू करने के साथ करती चली आ रही थी, पर आज के नवउदारवादी पूँजीवाद की उम्र बढ़ाने के लिए मज़दूरों का और ख़ून चूसने की छूट देना ज़रूरी है और यह काम भाजपा सरकार अपने दूसरे कार्यकाल में भी ज़ोर-शोर से करेगी।

मोदी सरकार का दूसरा कार्यकाल

पूँजीपतियों को रिझाने के लिए रहे-सहे श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाने की तैयारी

- आनन्द सिंह

नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली राजग सरकार ने अपने पहले कार्यकाल के दौरान पूँजीपति वर्ग के सच्चे सेवक के रूप में काम करते हुए तमाम मज़दूर-विरोधी नीतियाँ लागू कीं। हालाँकि अपने असली चरित्र को छिपाने और मज़दूर वर्ग की आँखों में धूल झोंकने के लिए नरेन्द्र मोदी ने ख़ुद को 'मज़दूर नम्बर वन' बताया और 'श्रमेव जयते' जैसा खोखले जुमले दिये, लेकिन उसकी आड़ में मज़दूरों के रहे-सहे अधिकारों पर डाका डालने का काम बदस्तूर जारी रहा। अब जबकि मोदी सरकार दोबारा सत्ता पर आसीन हो चुकी है, पूँजीपतियों के लग्गू-भग्गू और उनके थिंक टैंक कयास लगा रहे हैं कि मोदी सरकार इस कार्यकाल में श्रम क़ानूनों को पूरी तरह से बेमतलब बना देगी। लोकसभा चुनाव के नतीजे आते ही भाजपा नेता सुब्रमण्यम ने श्रम क़ानूनों में ज़बरदस्त फेरबदल करने की अपील कर डाली। नीति आयोग के उपाध्यक्ष राजीव कुमार ने भी चुनावी मोदी के शपथ ग्रहण लेने से पहले ही देशी-विदेशी पूँजीपतियों को ख़ुशख़बरी सुनाते हुए तथाकथित श्रम सुधारों सहित तमाम आर्थिक सुधारों की गति तेज़ करने का भरोसा जताया।

मोदी सरकार ने अपने पिछले कार्यकाल के दौरान ही देशी-विदेशी पूँजीपतियों को रिझाने के लिए 'ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस (कारोबार करने में सहूलियत)' के प्रति अपनी प्रतिबद्धता ज़ाहिर करते हुए 44 केन्द्रीय श्रम क़ानूनों को ख़त्म करके 4 श्रम संहिताओं — मज़दूरी, औद्योगिक सम्बन्ध, सामाजिक और व्यावसायिक सुरक्षा और श्रमिकों के स्वास्थ्य और कार्यस्थलों की स्थिति पर — को बनाने की योजना बनायी थी। अगस्त 2017 में लोकसभा में 'कोड ऑफ़ वेजेज बिल' (मज़दूरी की संहिता विधेयक) प्रस्तुत किया गया। इस विधेयक में मज़दूरों के काम के प्रदर्शन और हड़तालों में भागीदारी जैसे कारणों की आड़ में मज़दूरी में कटौती के प्रावधान हैं और इसमें मालिकों को काम के घण्टों और ओवरटाइम की परिभाषा में फेरबदल करने के भी अधिकार दिये गये हैं। इस विधेयक का एक प्रावधान यह है कि नये मज़दूरों के लिए तीन साल तक नियोक्ता के हिस्से का प्रॉविडेण्ट फ़ण्ड सरकार देगी। ज़ाहिरा तौर पर यह प्रावधान करदाताओं की जेब काटकर मालिकों की तिज़ोरी में डालने के लिए बनाया गया है।

उपरोक्त विधेयक की तुलना पहले के श्रम क़ानूनों से करने पर साफ़ समझ में आता है कि श्रमिकों के न्यूनतम वेतन तय करने को लेकर जो सुरक्षा मानक थे उन्हें कमज़ोर किया जा रहा है। पहले न्यूनतम वेतन निर्धारित करने के लिए त्रिकोणीय प्रणाली थी जिसमें विभिन्न क्षेत्र के मज़दूरों के प्रतिनिधि, फ़ैक्टरी मालिक और सरकार के प्रतिनिधि मिलकर एक सेण्ट्रल एडवाइज़री बोर्ड में न्यूनतम वेतन निर्धारित करते थे। पर अब नयी संहिता में मज़दूरों के प्रतिनिधित्व को कमज़ोर कर दिया गया है जिससे कि न्यूनतम वेतन निर्धारण में मज़दूरों की भागीदारी लगभग ख़त्म हो जायेगी। पहले उद्योग में काम के चरित्र के आधार पर अलग-अलग उद्योग का न्यूनतम वेतन निर्धारित होता था पर अब सभी उद्योगों में एक जैसा समय-रेट और पीस-रेट के आधार पर न्यूनतम वेतन तय किया जायेगा। मज़दूरों का एक उद्योग के आधार पर संगठित होकर माँग रखने का अधिकार अब छीन लिया जायेगा। पहले न्यूनतम वेतन राष्ट्रीय स्तर पर तय होता था परन्तु अब नयी संहिता में न्यूनतम वेतन तय करने का अधिकार राज्यों को दे दिया जायेगा जिससे सभी राज्यों में ज़्यादा से ज़्यादा निवेश को आकर्षित करने की होड़ लगेगी और अन्तरराज्यीय प्रतिद्वन्द्विता के चलते राज्यों द्वारा श्रमिकों का न्यूनतम वेतन और कम निर्धारित होगा। न्यूनतम वेतन को संशोधित करने का निर्धारित समय 5 साल था परन्तु नयी संहिता में इस निर्धारित समय को हटा दिया गया है और जानबूझकर इस मामले में अस्पष्टता रखी गयी है। इसके साथ ही महिलाओं के लिए न्यूनतम वेतन निर्धारण की प्रक्रिया में पुरुषों के बराबर का वेतन मिलने के लिए कोई तय नियम नहीं बनाया गया है।

इसी प्रकार औद्योगिक सम्बन्धित संहिता द्वारा मज़दूरों को यूनियन बनाने और उसके माध्यम से सामूहिक मोलभाव करने की जो आज़ादी पहले प्राप्त थी उसमें रुकावटें पैदा की गयी हैं जैसे ट्रेड यूनियन के रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया में नये अवरोध लगा दिये गये हैं जिससे यूनियन बनाना ही और कठिन हो जायेगा, यूनियन की मान्यता रद्द कर देने के लिए नयी नयी शर्तें लगा दी गयी हैं जिससे पूँजीपति कई कारणों से यूनियन की मान्यता रद्द कर सकते हैं, मज़दूरों की गोपनीयता को दरकिनार कर सभी जानकारी रजिस्ट्रार को देना आवश्यक बना दिया है जिसके चलते मज़दूरों में निजी स्तर पर एक भय बना रहेगा, यूनियन पर लगाया जाने वाला जुर्माना भी बढ़ा दिया गया है जिससे यूनियन पनप ना पाये और दूसरी तरफ़ फ़ैक्टरी मालिकों के लिए दण्ड बहुत कम रखे गये हैं, नयी संहिता के अनुसार 300 मज़दूरों तक की फ़ैक्टरियों में मालिक अपनी मनमर्ज़ी से मज़दूरों को रखने और निकालने का फ़ैसला कर सकते हैं और उन्हें सरकार से इसकी कोई अनुमति नहीं लेनी पड़ेगी। इन सभी बदलावों का सार यही है कि मज़दूरों के यूनियन बनाने की क्षमता को लगभग असम्भव बना दिया जाये।

तीसरी संहिता है 'सामाजिक सुरक्षा संहिता' जिसके माध्यम से सरकार सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं जैसेकि ईपीएफ़ और ईएसआई को मिलाकर एक बड़ी सुरक्षा योजना बनाना चाह रही है। असल में यह काम इसलिए किया जा रहा है कि मज़दूरों का एक जगह एकत्र किया गया सारा पैसा सट्टा बाज़ार में निवेश किया जा सके। श्रमिकों के स्वास्थ्य और कार्यस्थलों पर लागू की जाने वाली चौथी संहिता भी फ़ैक्टरी मालिकों पर मज़दूरों की जान से खेलने के लिए कोई कठोर दण्ड नहीं लगाती दिखती जबकि सच्चाई यह है कि फ़ैक्टरी दुर्घटनाओं और उसमें अपाहिज होने वाले और जान गँवाने वाले मज़दूरों की संख्या में निरन्तर बढ़ोत्तरी हुई है। निचोड़ के तौर पर कहा जाये तो इन चारों श्रम संहिताओं द्वारा सुधार के नाम पर मज़दूरों की न्यूनतम मज़दूरी को और कम किया जा रहा है, मज़दूरों को इच्छानुसार नौकरी पर रखने और हटाने की पूरी स्वतन्त्रता पूँजीपतियों को मुहैया करायी जा रही है और बुनियादी ट्रेड यूनियन के अधिकारों को भी छीना जा रहा है।

मोदी सरकार के पहले कार्यकाल में भी कई मज़दूर विरोधी कदम उठाये गये थे। उदाहरण के लिए कारख़ाना अधिनियम में बदलाव किया गया था। इस बदलाव के तहत छोटी इकाइयाँ जिनमें कारख़ाना अधिनियम लागू नहीं होगा उनमें मज़दूरों की निर्धारित संख्या को 10 से बढ़ाके 40 कर दिया गया था। इस फेरबदल से अब 70% पंजीकृत कारख़ानों पर कारख़ाना अधिनियम ही लागू नहीं होता है। फ़ैक्टरी मालिक कोशिश करते हैं कि छोटी-छोटी यूनिटों का अलग पंजीकरण करवा के मज़दूरों की संख्या 40 से कम रखी जाये जिससे वे कारख़ाना अधिनियम के बाहर बने रहें और मज़दूरों का जमकर शोषण करें। 2015 के ही एक संशोधन के मुताबिक़, कारख़ाना मालिक महिलाओं को रात में काम करने के लिए नियुक्त कर सकते हैं। 2016 के एक संशोधन के मुताबिक़, एक तिमाही में ओवरटाइम का समय बढ़ाकर 50 से 100 घण्टे कर दिया गया था और उसमें भी भारी वर्कलोड वालों के लिए यह सीमा 115 घण्टे और तथाकथित सार्वजनिक हितों वाले कामों के लिए 125 घण्टे रखी गयी। इसके अलावा स्थायी नियुक्ति की जगह पर निश्चित अवधि रोज़गार योजना का लाया जाना और अप्रेण्टिस ऐक्ट में बदलाव किये जाने की योजना है जिनका मक़सद कम्पनियों को कम वेतन में ज़्यादा काम करवाने की छूट देना है।

मोदी सरकार ने कर्मचारी भविष्य निधि में महिला कर्मचारियों के योगदान को 12 प्रतिशत से कम करके 8 प्रतिशत

(पेज 4 पर जारी)

ख़र्चीला और विलासी बुर्जुआ लोकतन्त्र : जनता की पीठ पर भारी-भरकम बोझ सा सवार

- आनन्द सिंह

हर बार के लोकसभा चुनावों की ही तरह इस बार भी लोकसभा चुनावों के दौरान राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय मीडिया में भारतीय लोकतन्त्र की शान में कसीदे पढ़े गये। किसी ने इन चुनावों को लोकतन्त्र के महाकुम्भ की संज्ञा दी तो किसी ने महापर्व की। लेकिन किसी ने ये बुनियादी सवाल पूछने की जहमत नहीं उठायी कि महीनों तक चली इस क़वायद से इस देश की आम जनता को क्या मिला और किस क़ीमत पर। चुनावी क़वायद ख़त्म होने के बाद जारी होने वाले ख़र्च के आँकड़े पर निगाह दौड़ाने भर से इसमें कोई शक नहीं रह जाता है कि इस तथाकथित लोकतन्त्र को वास्तव में धनतन्त्र की संज्ञा दी जानी चाहिए।

वैसे तो आज़ाद भारत में होने वाले सभी चुनावों में पैसा पानी की तरह बहाया गया, लेकिन इस बार के लोकसभा चुनावों में पार्टियों ने, ख़ासकर सत्तासीन भाजपा ने, चुनाव प्रचार के दौरान पैसे का अश्लील प्रदर्शन करके पुराने सारे कीर्तिमान ध्वस्त कर दिये। 'सेण्टर फ़ॉर मीडिया स्टडीज़' की एक रिपोर्ट के मुताबिक़ गत लोकसभा चुनावों में अनुमानत: 60 हज़ार करोड़ रुपये ख़र्च किये गये। इसमें लगभग 15 हज़ार करोड़ रुपये सीधे मतदाताओं को दिये गये और लगभग 25 हज़ार करोड़ रुपये पब्लिसिटी और मार्केटिंग में ख़र्च किये गये। ग़ौरतलब है कि 2014 के लोकसभा चुनावों की तुलना में यह राशि दोगुनी और 2009 के लोकसभा चुनावों के मुक़ाबले यह राशि तीन गुनी है। इस प्रकार 17वीं लोकसभा के चुनाव ने दुनिया के सबसे ख़र्चीले चुनाव का कीर्तिमान स्थापित कर दिया है। ज़ाहिर है कि इन चुनावों में जिन पार्टियों या उम्मीदवारों के पास इतने बड़े पैमाने पर मतदाताओं को रिश्वत देने, विशालकाय रैलियाँ आयोजित करने और पूरे देश में पब्लिसिटी अभियानों की आँधी बहाने के लिए ज़रूरी फ़ण्ड नहीं हैं, वे कभी भी जीतने के बारे में सोच भी नहीं सकतीं। ऐसे में चुनावों की स्वतन्त्रता और निष्पक्षता के दावों पर बहुत बड़ा सवालिया निशान खड़ा होता है।

यही नहीं इस बार के चुनावों में कॉरपोरेट फ़ण्डिंग का अनुपात पहले के किसी भी चुनाव के मुक़ाबले सबसे ज़्यादा रहा है। इसका साफ़ मतलब है कि कॉरपोरेट घरानों ने समूची चुनाव की प्रक्रिया को अपनी जेब में रख लिया है। स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनावों के लम्बे-चौड़े दावों के पीछे छुपी नंगी सच्चाई यह है कि इस प्रक्रिया में आमतौर पर वही पार्टी जीतती है जिस पर पूँजीपति वर्ग के सबसे बड़े हिस्से की सरपरस्ती रहती है। गुज़रे चुनावों में कुल ख़र्च का लगभग 45 प्रतिशत, यानी लगभग 27 हज़ार करोड़ रुपये तो अकेले सत्तारुढ़ भारतीय जनता पार्टी ने ख़र्च किया। चुनावों के नतीजों से साफ़ है कि नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा की बहुचर्चित जीत का सबसे बड़ा कारण बड़े पूँजीपति वर्ग का लगभग एकमत होकर पूरी तरह से भाजपा के पक्ष में खड़ा होना है। ज़ाहिरा तौर पर पूँजीपति वर्ग ने भाजपा को चन्दा धर्मार्थ नहीं दिया है, बल्कि इस निवेश का रिटर्न वे सरकार से मनचाही नीतियाँ लागू करवाकर निकालेंगे। नयी सरकार बनते ही जिस तरह से पूँजीपतियों के लग्गू-भग्गू हर्षातिरेक में आकर आर्थिक सुधारों की रफ़्तार तेज़ करने की माँग कर रहे हैं उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पूँजीपति वर्ग ने भाजपा और नरेन्द्र मोदी पर दाँव क्यों लगाया था।

आइए देखते हैं कि देश की मेहनतकश जनता के ख़ून-पसीने की कमाई की बदौलत सम्पन्न हुए इन चुनावों में जो प्रतिनिधि चुनकर आये हैं उनकी पृष्ठभूमि क्या है। 'एसोसिएशन ऑफ़ डेमोक्रेटिक राइट्स' की एक रिपोर्ट के मुताबिक़ गुज़रे लोकसभा चुनावों में चुने गये सांसदों में से 88 प्रतिशत करोड़पति हैं। ग़ौरतलब है कि 2009 की लोकसभा में 58 प्रतिशत सांसद करोड़पति थे। यही नहीं, नवनिर्वाचित 542 सांसदों में 233, यानी 43 प्रतिशत आपराधिक पृष्ठभूमि के हैं। इनमें से तमाम सांसदों पर तो हत्या, बलात्कार, दंगे-फ़साद जैसे संगीन आरोप लगे हैं। इन आँकड़ों को देखने के बाद कोई भी तार्किक व्यक्ति इस बेहद ख़र्चीली और दोषपूर्ण चुनावी प्रक्रिया के औचित्य पर प्रश्नचिह्न उठाये बिना नहीं रह सकता।

पिछले साल एक आरटीआई आवेदन से यह खुलासा हुआ था कि मोदी सरकार के पहले चार वर्षों के दौरान सांसदों के कुल ख़र्च और सुविधाओं में करीब 1997 करोड़ रुपये का ख़र्च हुआ था। संसद की एक दिन की कार्रवाई पर लाखों रुपये ख़र्च हो जाते हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि सांसदों की विलासी जीवनशैली में लगने वाला पूरा ख़र्च आम जनता की मेहनत की कमाई से वहन किया जाता है।

मुज़फ़्फ़रपुर : एक और सामूहिक हत्याकाण्ड

(पेज 1 से आगे)

तब जब गोरखपुर और उसके आसपास के ज़िलों में पिछले 40 सालों में जापानी इन्सेफ़लाइटिस से 50 हज़ार से ज़्यादा मौतें हो चुकी हैं और हर वर्ष इस मौसम में उस इलाक़े का एकमात्र मेडिकल कॉलेज बीमार बच्चों से भर जाता है।

बिहार में भी चमकी बुखार का प्रकोप नया नहीं है। हर वर्ष इससे मौतें होती हैं लेकिन सरकारों के लिए इन ग़रीब लोगों की जान की क़ीमत कीड़ों-मकोड़ों से ज़्यादा नहीं है।

नेशनल सैंपल सर्वे के आँकड़ों के आधार पर 2016 में 'द टेलीग्राफ़' अख़बार में छपी एक रिपोर्ट के अनुसार बिहार में स्वास्थ्य पर औसतन प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष ख़र्च 348 रुपए है, जबकि राष्ट्रीय औसत 724 रुपया है। निजी अस्पतालों में भर्ती का अनुपात राज्य में 44.6 प्रतिशत है, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह 56.6 प्रतिशत है। लेकिन निजी अस्पतालों में दिखाने का अनुपात बिहार में 91.5 प्रतिशत है जबकि राष्ट्रीय अनुपात 74.5 प्रतिशत है। बिहार की सिर्फ़ 6.2 प्रतिशत आबादी के पास स्वास्थ्य बीमा है। इसमें राष्ट्रीय औसत 15.2 प्रतिशत है। राज्य के 11 प्रतिशत परिवार स्वास्थ्य पर बहुत भारी ख़र्च के बोझ तले हुए हैं।

वर्ष 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की शुरुआत के बाद स्वास्थ्य के बजट में सालाना 10 प्रतिशत बढ़ोत्तरी की दरकार को बिहार सरकार ने लागू ही नहीं किया है। हालाँकि 2014-15 में बजट का 3.8 प्रतिशत हिस्सा स्वास्थ्य के मद में था और यह 2016-17 में 5.4 प्रतिशत हो गया, लेकिन 2017-18 में यह गिरकर 4.4 प्रतिशत हो गया। इस अवधि में राज्य के कुल बजट में 88 प्रतिशत की बढ़त हुई थी। बिहार में स्वास्थ्य ख़र्च का लगभग 80 प्रतिशत परिवार ख़ुद उठाता है, जबकि इस मामले में राष्ट्रीय औसत 74 प्रतिशत है।

बिहार में एक भी ऐसा सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र नहीं है, जो स्थापित मानकों पर खरा उतरता हो। सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों के अभाव के मामले में भी बिहार पहले स्थान पर है। साल 2015 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन ने जानकारी दी थी कि हर एक लाख जनसंख्या पर एक ऐसा केन्द्र होना चाहिए। इस हिसाब से बिहार में 800 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की दरकार है लेकिन राज्य में 200 ही ऐसे केन्द्र हैं। राज्य में 3,000 से अधिक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र होने चाहिए, लेकिन ऐसे केन्द्रों की संख्या सिर्फ़ 1,883 है। एक ग्रामीण स्वास्थ्य उपकेन्द्र के तहत लगभग 10 हज़ार आबादी होनी चाहिए, लेकिन बिहार में ऐसा एक उपकेन्द्र 55 हज़ार से अधिक आबादी का उपचार करता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार बिहार भारत के उन चार राज्यों में है, जहाँ स्वास्थ्यकर्मियों की बहुत चिन्ताजनक हद तक कमी है। एलोपैथिक डॉक्टरों की उपलब्धता के मामले में भी बिहार सबसे नीचे है। नेशनल हेल्थ प्रोफ़ाइल के मुताबिक, बिहार में 28,391 लोगों पर एक डॉक्टर है, जबकि दिल्ली में यही आँकड़ा 2,203 पर एक डॉक्टर का है। इनमें से भी ज़्यादातर डॉक्टर शहरों में हैं। नेशनल हेल्थ प्रोफ़ाइल 2018 के अनुसार, बिहार की 96.7 प्रतिशत महिलाओं को प्रसव से पहले पूरी देखभाल नहीं मिलती है।

यूनिसेफ़ के अनुसार, बच्चों में गम्भीर कुपोषण के मामले में भी बिहार देश में पहले स्थान पर है। साल 2014-15 और 2017-18 के बीच पोषण का बजट भी घटाया गया है। मुज़फ़्फ़रपुर में इतनी बड़ी संख्या में बच्चों की मौत के पीछे भी कुपोषण एक बड़ा कारण है।

बीमारी का यह हमला आकस्मिक नहीं था। इंसेफ़ेलाइटिस की वजह से हर साल हमारे देश में हज़ारों बच्चे मर जाते हैं। यह बीमारी हर बार इसी मौसम में अपना क़हर ढाती है। 1978 से अब तक इन्सेफ़लाइटिस अकेले पूर्वांचल में 50 हज़ार से अधिक मासूमों को लील चुकी है। 2005 में इसने महामारी का रूप लिया था। तब अकेले गोरखपुर के बीआरडी मेडिकल कॉलेज में 1132 मौतें हुई थीं।

और यह सिर्फ़ मुज़फ़्फ़रपुर या गोरखपुर की बात नहीं है। पूरे ही देश में स्वास्थ्य सेवाओं का यही हाल है। जनता को हर तरह की स्वास्थ्य सेवा देने की ज़िम्मेदारी होती है सरकार की। लेकिन अव्वल तो सरकार यह करती नहीं है और कुछ सरकारी अस्पताल जो ठीकठाक काम करते भी थे, उनकी हालत भी अब बद से बदतर होती जा रही है। पिछले तीन दशकों के दौरान आर्थिक सुधारों और नवउदारवादी नीतियों के चलते हर क्षेत्र की तरह जनस्वास्थ्य की हालत भी खस्ता हो चुकी है। सरकार लगातार इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ाती जा रही है। पूँजीपति तो कोई भी काम मुनाफ़े के लिए ही करता है तो ज़ाहिर है कि स्वास्थ्य सेवाएँ महँगी तो होनी ही हैं। और महँगी होने के बाद भी जान नहीं बचती। परिणाम हमारे सामने है।

बच्चे जब मर रहे थे
वे शपथ ग्रहण कर रहे थे
बच्चे जब मर रहे थे
वे मैच का स्कोर पूछ रहे थे
बच्चे जब मर रहे थे
वे जय श्रीराम के नारे लगा रहे थे
बच्चे जब मर रहे थे
वे वन्दे मातरम गा रहे थे
बच्चे जब मर रहे थे
तब चुनाव ख़त्म हो गया था
वे बच्चे की लाशों पर अब
तिरंगा फहरा रहे थे
बच्चे नहीं मर रहे थे
यह पूरा देश मर रहा था
यह एक नया इंडिया था
जो मरते हुए देश में इस तरह
जन्म ले रहा था।

– विमल कुमार

अच्छे दिन और विकास के लोकलुभावन नारे उछालने वाली और झूठे राष्ट्रवाद के नाम पर नफ़रत की राजनीति करने वाली सरकारों को आम आदमी की सेहत का कोई ख़्याल नहीं रहता है। जो बीमारियाँ दुनिया के ज़्यादातर देशों से ग़ायब हो गयीं उनसे भी हमारे देश में आम लोग मरते रहते हैं। बीमारी के सही इलाज के इन्तज़ाम करना, उससे बचाव के बारे में लोगों को जागरूक करना और किसी आपातस्थिति से निपटने की पूरी तैयारी रखना सरकार को ही सुनिश्चित करना चाहिए। इनके लिए ज़रूरी बजट हर हाल में उपलब्ध होना चाहिए। साथ में यह भी सुनिश्चित होना चाहिए कि यह बजट सही समय पर सही जगह लग जाये। लेकिन इनमें से कोई भी चीज़ नहीं होती और इसी तरह से मरीज़ मौत का शिकार हो जाते हैं। बजट की बात करें तो विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार किसी भी देश को अपनी जीडीपी का कम-से-कम 5 प्रतिशत हिस्सा स्वास्थ्य क्षेत्र में लगाना चाहिए। भारत की सरकारों ने पिछले दो दशक के दौरान लगातार 1 प्रतिशत के आसपास ही इसमें लगाया है। 11वीं पंचवर्षीय योजना में 2 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया था और केवल 1.09 प्रतिशत ही लगाया गया। 12वीं योजना के पहले सरकार ने उच्च स्तरीय विशेषज्ञों का एक ग्रुप बनाया था जिसने इस योजना में स्वास्थ्य सेवाओं के लिए जीडीपी का 2.5 प्रतिशत निवेश करने की सिफ़ारिश की थी, लेकिन सरकार द्वारा लक्ष्य रखा गया सिर्फ़ 1.58 प्रतिशत। पिछले बजट में भी यह डेढ़ प्रतिशत के आसपास ही रहा है। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं में निजी क्षेत्र द्वारा किया गया निवेश इस क्षेत्र में किये गये कुल निवेश का 75 प्रतिशत से भी ज़्यादा है। पूरी दुनिया में स्वास्थ्य सेवाओं के अन्तर्गत निजी क्षेत्र की होने वाली सबसे बड़ी भागीदारियों में एक नाम भारत का भी है। ज़ाहिर है कि निजी क्षेत्र की ये कम्पनियाँ लोगों के स्वास्थ्य से खेलते हुए पैसे बना रही हैं। इनकी दिलचस्पी लोगों के स्वास्थ्य में नहीं बल्कि अपने मुनाफ़े में होती है और जब इनको लगता है कि मुनाफ़ा कम होने लगा है या उसमें कोई अड़चन आ गयी है तो ये ऐसा ही करती हैं जैसे पुष्पा सेल्स नाम की कम्पनी ने गोरखपुर में ऑक्सीजन सप्लाई रोककर किया था। और यह सब सरकार की शह पर होता है।

देश के हर नागरिक को स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित होनी चाहिए। सही समय पर सही अस्पताल, डॉक्टर और इलाज मुहैया हो यह ज़िम्मेदारी भी सरकार की ही है। मानकों के अनुसार हमारे देश में हर 30,000 की आबादी पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, हर एक लाख की आबादी पर 30 बेड वाला एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र और हर सब-डिवीज़न पर 100 बेड वाला सामान्य अस्पताल होना चाहिए, लेकिन यह भी सिर्फ़ काग़ज़ों पर है। और ये काग़ज़ों के मानक भी सालों पुराने हैं जिनमें कोई बदलाव नहीं किया गया है। बदलाव करना तो दूर की बात, इन्हीं मानकों को सही ढंग से लागू नहीं किया जाता, जबकि पिछले दो दशक में कुकुरमुत्तों की तरह प्राइवेट और कॉरपोरेट अस्पताल ज़रूर उग आये हैं, जिनमें जाकर मरीज या तो बीमारी से मर जाता है या फिर इनके भारी-भरकम ख़र्चे की वजह से।

टीआरपी की खोज में टीवी चैनलों के कैमरे कुछ दिनों तक मुज़फ़्फ़रपुर के अस्पताल में मँडराने के बाद लौट जायेंगे। मीडिया और नेताशाही-अफ़सरशाही के लिए मुज़फ़्फ़रपुर के ये बच्चे वैसे ही भुला दिये जायेंगे जैसे पिछले वर्ष इसी शहर में मासूम बच्चियों के बलात्कार की वहशी घटनाओं को भुला दिया गया। वैसे ही जैसे गोरखपुर के सैकड़ों मासूमों की मौत को भुला दिया गया। मगर हमें इन मौतों को याद रखना होगा। अगर अब भी आपके दिल में इन हत्यारों के प्रति नफ़रत और ग़ुस्सा नहीं फूट पड़ता, तो आपको इलाज की ज़रूरत है। वरना, अगर इन्सान हैं, तो जाग जाइए, और इन आदमख़ोरों से अपने बच्चों को, अपने समाज को, अपने मुल्क को बचाने के लिए आवाज़ उठाइए।

चुनाव ख़त्म, मज़दूरों की छँटनी शुरू

(पेज 3 से आगे)

उसकी सारी ज़मीन-जायदाद भी जियो के हवाले की जा सके। इस वर्ष मार्च में, पहली बार ऐसा हुआ कि अपने 1.68 लाख नियमित कर्मचारियों को वेतन देने के लिए जियो के पास पैसे ही नहीं थे। बड़ी मुश्किल से एक महीने बाद मामला हल हुआ। जनवरी 2018 में संचार राज्य मन्त्री मनोज सिन्हा ने घोषणा की थी कि बीएसएनएल को 4जी स्पेक्ट्रम आवंटित किया जायेगा जिसके बिना मैदान में टिकना उसके लिए असम्भव है। लेकिन उसे अब तक 4जी स्पेक्ट्रम नहीं मिला। दूसरी ओर, संचार मन्त्री रविशंकर प्रसाद बेशर्मी से बयान देते हैं कि बीएसएनएल को प्रतिस्पर्धी बनना होगा।

कारों की बिक्री में भारी गिरावट, बड़े पैमाने पर छँटनी शुरू

आर्थिक संकट के गहराने का एक बड़ा संकट ऑटोमोबाइल उद्योग की ख़स्ता हालत है। पिछली मई में कारों की कुल बिक्री में पिछले साल के मुक़ाबले 20.55 प्रतिशत और उत्पादन में 12.23 प्रतिशत की भारी गिरावट आयी। देश की सबसे बड़ी कार कम्पनी मारुति सुज़ुकी ने पिछले करीब 3 महीने में अपना उत्पादन लगभग 39 प्रतिशत कम कर दिया। इसकी कारों की बिक्री में भी भारी गिरावट आयी है और कम्पनी के पास अनबिकी कारों का बड़ा ज़ख़ीरा इकट्ठा हो गया है। मारुति ने अपनी डीज़ल कारों का उत्पादन अप्रैल 2020 से बन्द कर देने का भी ऐलान किया है।

इसका नतीजा भी जल्दी ही सामने आ गया। ऑटोमोबाइल उत्पादन के देश के सबसे बड़े केन्द्र गुड़गाँव-मानेसर इलाक़े में मारुति के तीनों कारख़ानों और उसके लिए पार्ट्स बनाने वाली वेण्डर कम्पनियों में बड़े पैमाने पर छँटनी होनी शुरू हो गयी है। गुड़गाँव-मानेसर क्षेत्र में मारुति की करीब 400 वेण्डर कम्पनियाँ हैं और करीब 75 वेण्डर कम्पनियाँ गुजरात में हैं। मारुति से ऑर्डर में कमी आते ही लगभग इन सभी ने अपने यहाँ छँटनी शुरू कर दी है।

मारुति के पार्ट्स बनाने वाली मानेसर की बेलसोनिका कम्पनी ने अपने सारे कैजुअल कर्मचारियों को निकाल दिया है। अगले चरण में करीब 200 और मज़दूरों को निकालने की तैयारी है। मारुति, होण्डा, हीरो आदि के लिए इलेक्ट्रिक पार्ट्स बनाने वाली मानेसर की डेंसो कम्पनी ने मई में सैकड़ों मज़दूरों को निकाल दिया। बिना किसी क़ानूनी प्रक्रिया का पालन किये कम्पनी के गेट पर छँटनी की लिस्ट दे दी गयी और मज़दूरों को गेट से ही वापस कर दिया गया। मज़दूरों से कह दिया गया उनकी एक महीने की तनख़्वाह उनके खाते में डाल दी गयी है और अब उनको आने की ज़रूरत नहीं है। ये वे मज़दूर थे जो डेंसो में 3-4 वर्षों से काम कर रहे थे। कहने की ज़रूरत नहीं कि इस अँधेरगर्दी पर भी श्रम विभाग के कानों पर जूँ नहीं रेंगी।

गुड़गाँव और मानेसर में मारुति के तीन कारख़ानों में लगभग 35 हज़ार मज़दूर काम करते हैं जिनमें करीब साढ़े छह हज़ार मज़दूर परमानेण्ट हैं और बाक़ी टेम्परेरी, कैज़ुअल, ट्रेनी या अप्रेण्टिस हैं। अभी कम्पनी के लिए स्थायी मज़दूरों को तो निकालना आसान नहीं है, लेकिन टेम्परेरी, कैज़ुअल, ट्रेनी और अप्रेण्टिस मज़दूरों को कम किया जा रहा है।

गुड़गाँव से लेकर धारूहेड़ा और बावल तक के औद्योगिक क्षेत्र में करीब दो दर्जन कम्पनियों में छँटनी और तालाबन्दी हो चुकी है। अब आने वाले महीनों में यह सिलसिला और तेज़ होगा।

– बिगुल संवाददाता

चुनाव में ईवीएम के इस्तेमाल को लेकर आपको क्यों चिन्तित होना चाहिए?

अभिजीत ए. एम. के विस्तृत लेख पर आधारित

(लेखक कम्प्यूटर और साइबर-सुरक्षा के जानकार हैं। उनका पूरा लेख जगह की कमी के कारण यहाँ देना सम्भव नहीं है। मगर आप ब्यौरेवार तथ्यों और तर्कों के साथ यह विस्तृत लेख 'मज़दूर बिगुल' की वेबसाइट (mazdoorbigul.net) पर पढ़ सकते हैं।)

लोकसभा चुनाव में भाजपा की भारी जीत के पीछे अहम भूमिका उस उन्मादी राष्ट्रवादी प्रचार की है जो मोदी-शाह के नेतृत्व में भाजपा और संघ ने पुलवामा और बालाकोट के बाद शुरू किया और ज़रख़रीद मीडिया के ज़रिये, अपनी सैन्य कार्रवाई की शर्मनाक असफलता के बावजूद, जनमानस में यह बात बैठा दी कि 'मोदी घर में घुसकर मारता है!' मोदी का राष्ट्रवाद न सिर्फ़ हिन्दू पहचान पर आधारित था, बल्कि वह पिछड़ी और दलित जातियों की पहचान को भी "हिन्दू" पहचान में समाहित करने और इन जातियों के मध्यवर्गीय हिस्सों और निराशा-जनित उन्माद से ग्रस्त युवाओं को अपने वोट बैंक में बदल पाने में सफल रहा। विपक्षी पार्टियाँ अपनी कमज़ोरी और अतीत के अपने काले कारनामों के चलते जनता में कोई प्रभावी विकल्प पेश करने में नाकाम रहीं। फिर भी यह सच नहीं कि नोटबन्दी, जी.एस.टी., खेती की तबाही, बेरोज़गारी, महँगाई और भ्रष्टाचार जैसे सारे मसले अन्धराष्ट्रवादी उन्माद की बाढ़ में एकदम किनारे लग गये थे।

इस बात को मानने के स्पष्ट कारण हैं कि भाजपा ने इस चुनाव में अत्यन्त कुशलता के साथ, और योजनाबद्ध ढंग से, चुनी हुई सीटों पर ईवीएम में गड़बड़ी का खेल खेला है। जिन लोगों ने फ़ासिस्टों के सिद्धान्त और आचरण का अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि फ़ासिस्ट सत्ता तक पहुँचने के लिए धार्मिक-नस्ली-अन्धराष्ट्रवादी उन्माद उभाड़ने के साथ ही किसी भी स्तर तक की धाँधली और अँधेरगर्दी कर सकते हैं। अगर कोई धाँधली थी ही नहीं, तो इतनी बदनामी झेलकर सुप्रीम कोर्ट और केन्द्रीय चुनाव आयोग के सारे नख-दन्त तोड़कर बिल्कुल पालतू बना देने की ज़रूरत ही क्या थी? चुनाव आयोग विपक्षी दलों की सारी आपत्तियों को और अपने ही एक सदस्य अशोक लवासा की आपत्तियों को भी ख़ारिज करता हुआ भाजपा को क्लीन चिट पर क्लीन चिट देता रहा और हर याचिका पर सुप्रीम कोर्ट भी यही रुख़ अपनाता रहा। सोचने की बात है कि जब सात चरणों के चुनाव में करीब डेढ़ महीने का समय ख़र्च किया जा सकता था, तो 50 प्रतिशत वीवीपैट की पर्चियों से मिलान कराने में अगर नतीजे घोषित करने में कुछ दिन और लग जाते तो क्या क़हर टूट पड़ता। फिर केवल नतीजों में देरी का तर्क देकर विपक्षी दलों की इस माँग को के.चु.आ. और सुप्रीम कोर्ट ने आनन-फ़ानन में क्यों ख़ारिज कर दिया है?

भारत में 2004 से सभी लोकसभा और विधानसभा चुनाव ईवीएम से ही हुए हैं, हालाँकि चुनाव में इसका इस्तेमाल तो 1998 में ही शुरू हो गया था। शुरू से ही इसे लेकर विवाद रहा है और बाल ठाकरे (शिवसेना), आडवाणी व सुब्रमण्यम स्वामी (भाजपा), शरद पवार (राकांपा), चन्द्रबाबू नायडू (तेदेपा), ममता बनर्जी (तृणमूल), देवेगौड़ा (जद-एस), अखिलेश यादव (सपा), मायावती (बसपा), सीताराम येचुरी (माकपा), अरविन्द केजरीवाल (आप) कपिल सिब्बल (कांग्रेस) सहित लगभग सभी प्रमुख चुनावी पार्टियों के नेता ईवीएम से मतदान की प्रक्रिया को लेकर सवाल उठाते रहे हैं। यह बात अलग है कि जब परिणाम उनके पक्ष में आये तो उनका रुख़ बदल गया या वे चुप्पी साध गये।

ईवीएम के बिना भी चुनावी जालसाज़ियाँ दुनिया के किसी भी पूँजीवादी जनतन्त्र में कोई नयी बात नहीं हैं। जनसांख्यिकीय डेटा में फेरबदल, फ़र्ज़ी वोटर जोड़कर या सही वोटरों के नाम ग़ायब करके मतदाता सूचियों में मनचाहे तरीक़े से बदलाव करना, बूथ कैप्चरिंग, लोगों को ज़बरन वोट देने से रोकना, मतपेटियाँ लूट लेना, विरोधी के वोट काटने के लिए पैसे देकर डमी उम्मीदवार खड़े करना, वोट ख़रीदने जैसे तमाम तरीक़े यह बताते हैं कि पूँजीवादी पार्टियों में चुनाव जीतने के लिए हर तरह के हथकण्डे अपनाने को तैयार रहती हैं। ईवीएम के इस्तेमाल से उनकी नीयत पर कोई असर नहीं पड़ता। बल्कि जब भाजपा और आरएसएस जैसे फ़ासिस्ट संगठन हर हाल में चुनाव जीतने के लिए ज़बदस्त साज़िशाना तरीक़े से काम करते हैं, तो वे ईवीएम मशीनों की धाँधली के साथ ही साथ दूसरे तमाम तरीक़ों का इस्तेमाल भी ज़्यादा संगठित ढंग से और ज़्यादा बड़े पैमाने पर करते हैं। जैसे, इस चुनाव में अकेले मध्यप्रदेश में 60 लाख फ़र्ज़ी वोटर होने का आरोप लगा जो किसी भी चुनाव की दिशा बदलने के लिए काफ़ी है। इससे पहले आन्ध्र प्रदेश और कई अन्य राज्यों में लाखों मतदाताओं के नाम मतदान सूची से ग़ायब कर दिये थे। इनमें ज़्यादातर मतदाता उन समूहों के थे, जिनके बारे में माना जाता था कि वे भाजपा के विरोधी हैं।

फ़ासीवाद के दौर में, जब अदालतों से लेकर पुलिस, और मीडिया से लेकर चुनाव आयोग तक तमाम जनतान्त्रिक संस्थाओं को एक पार्टी का ग़ुलाम बना दिया है, उनमें अपने कारिन्दे भरे जा रहे हैं, फ़ासिस्ट संगठन ज़ोर-ज़बरदस्ती, दबाव और भयादोहन से उनसे काम ले रहे हैं, जब आतंकवाद के आरोपी संसद में पहुँच रहे हैं और उन पर से मुक़दमे हटाये जा रहे हैं, जजों की हत्याएँ हो रही हैं और गौ-गुण्डे अपना क़ानून चलाने के लिए आज़ाद हैं, तो ऐसे में इस बात पर सवाल उठना बिल्कुल लाज़िमी है कि वह चुनाव प्रक्रिया कितनी साफ़-सुथरी है जिससे देश पर राज करने वालों का फ़ैसला होता है।

चुनाव आयोग का यह दावा कि ईवीएम बिल्कुल पवित्र हैं और उनसे छेड़छाड़ सम्भव ही नहीं, इन दो बातों पर आधारित है कि ईवीएम को हैक नहीं किया जा सकता (यानी उसमें इलेक्ट्रॉनिक रूप से छेड़छाड़ नहीं की जा सकती) और वे पूरी तरह सुरक्षित रखी जाती हैं।

ईवीएम मशीनों के भण्डारण, इस्तेमाल, लाने-ले जाने, मरम्मत, मतगणना आदि को लेकर बहुत विस्तृत नियम-क़ायदे बनाये गये हैं। लेकिन कम्प्यूटर और साइबर सिक्योरिटी की दुनिया से वाक़िफ़ कोई भी व्यक्ति यह जानता है कि सुरक्षा में अगर सुई बराबर भी छेद हुआ तो उससे हाथी बराबर घातक कोड प्रवेश कर सकता है! ईवीएम के मामले में, छेद केवल तकनीकी या कम्प्यूटर-प्रोग्रामिंग से सम्बन्धित हों, यह ज़रूरी नहीं। प्रशासकीय प्रक्रिया में झोल या फेरबदल या मानवीय कमज़ोरियों के कारण छूट गये छेद भी गड़बड़ी के लिए काफ़ी हैं।

ईवीएम में गड़बड़ी कैसे की जा सकती है, इसे समझने के लिए ऐसे व्यक्ति के नज़रिये से देखना होगा जो चुनावी धोखाधड़ी करना चाहता हो, जो पूरी चुनाव प्रक्रिया को जानता हो और ऐसी तकनीकी या मानवीय चूकों को तलाश सकता हो जिनसे होने वाले सुई बराबर छेद से गड़बड़ी का हाथी भीतर घुसा जा सकता हो। अगर वह व्यक्ति या संगठन सत्ता में हो, और पूरी चुनाव मशीनरी नहीं, पर उसके कुछ या अनेक हिस्सों को प्रभावित कर सकता हो, तो काम आसान हो जाता है।

विश्वसनीयता घटाने वाले झूठे दावे

यह भी ध्यान देना ज़रूरी है कि ईवीएम फ़्रॉड के बारे में तमाम तरह के झूठे दावे भी किये जाते रहे हैं जिनके कारण उन व्यक्तियों और संगठनों की ओर से उठाये गये गम्भीर सवालों पर भी भ्रम पैदा हो जाता है जो ईवीएम को लेकर संजीदगी और वाजिब तर्कों के साथ अपनी बात कह रहे हैं। जैसे, यह दावा कि ईवीएम मतगणना के समय इण्टरनेट से जुड़ी रहती हैं और भाजपा से जुड़े हैकर रिलायंस और वोडाफ़ोन की टॉवरों से मैसेज भेजकर परिणाम बदल देते हैं। यह ग़लत है क्योंकि ईवीएम कभी इण्टरनेट से नहीं जोड़ी जाती हैं। इसी तरह, शुजा नाम के एक सन्दिग्ध व्यक्ति ने दो बार दावा किया (एक बार कांग्रेसी नेता कपिल सिब्बल के साथ) कि वह ईवीएम बनाने वाली सरकारी कम्पनी बीईएल/ईसीआईएल में रहा है और दिखा सकता है कि ईवीएम में छेड़छाड़ कैसे होती है। लेकिन काफ़ी प्रचार से किये गये उसके दोनों प्रदर्शन फ़्लॉप रहे और कुछ भी साबित नहीं कर पाये।

संजीदगी के साथ उठाये गये गम्भीर सवाल

कुछ प्रतिष्ठित कम्प्यूटर विशेषज्ञों द्वारा प्रकाशित एक पेपर में दावा किया गया कि "विस्तृत सुरक्षा उपायों के बावजूद भारत की ईवीएम गम्भीर हमलों का शिकार बनायी जा सकती हैं। अपराधी तत्वों या सत्तारूढ़ पार्टी के एजेण्टों की मशीनों तक पहुँच हो सकती है जिससे वे उनमें वोटों में गड़बड़ी करने वाले हार्डवेयर लगा सकते हैं। मतदान और मतगणना के बीच के समय में मशीनों तक पहुँच सकने वाले हमलावर मतदान की संख्या बदल सकते हैं और जान सकते हैं कि हर वोटर ने किस उम्मीदवार को वोट दिया। मज़े की बात यह है कि इस शोध का समर्थन भाजपा के प्रमुख नेता सुब्रमण्यम स्वामी और जीवीएल नरसिम्हा राव ने भी किया था, जो दोनों भाजपा के सांसद हैं।

के.चु.आ. ने सुरक्षा सम्बन्धी जो

(पेज 12 पर जारी)

ईवीएम में घपले के ख़िलाफ़ भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) का निर्वाचन आयोग पर विरोध प्रदर्शन!

चुनाव के दौरान देश के अनेक स्थानों से ईवीएम मशीनों में हेराफेरी की आ रही ख़बरों और ईवीएम में छेड़छाड़ को लेकर उठाये जा रहे गम्भीर सवालों के मद्देनज़र 22 मई को RWPI के नेतृत्व में निर्वाचन आयोग के सामने चुनाव में जालसाज़ी के ख़िलाफ़ ज़ोरदार प्रदर्शन किया गया। पुलिस ने सभी प्रदर्शनकारियों को गिरफ़्तार कर लिया जिन्हें बाद में रिहा किया गया। प्रदर्शन में माँग की गयी कि मतगणना के समय 100% वीवीपैट पर्चियों का मिलान किया जाये, अन्यथा 23 मई को घोषित नतीजे महज़ एक ढकोसला होगा। वोट देने का अधिकार जनता का सबसे बुनियादी जनवादी अधिकार है और इस पर फ़ासीवादी भाजपा और उसके प्रचार विभाग बने हुए निर्वाचन आयोग डाका डाल रहे हैं। गुप्त मतदान के ज़रिये प्रतिनिधियों को चुनने की व्यवस्था को ख़त्म करने की साज़िश का मुँहतोड़ जवाब देना ही होगा। केन्द्रीय चुनाव आयुक्त अशोक लवासा की आपत्तियों को सार्वजनिक करने से इन्कार और दो दिन से स्ट्रॉन्ग रूम के आगे मँडरा रही ईवीएम से भरी गाड़ियाँ ईवीएम के घोटाले की ओर साफ़ इशारा करती हैं और इसे रोकने का फ़िलहाल एकमात्र तरीक़ा वीवीपैट पर्चियों का 100% मिलान करना है। इस प्रदर्शन में सीपीआई-एमएल (एनडी) व मज़दूर किरायेदार पार्टी ने भी शिरकत की।

इसके बाद 30 मई को ईवीएम विरोधी जन आन्दोलन के बैनर तले विभिन्न संगठनों के साथ मिलकर देश के विभिन्न स्थानों पर साझा विरोध प्रदर्शन भी किये गये।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी को मिले समर्थन के लिए अभिवादन

अन्धकार है घना! पर संघर्ष है ठना!!

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) ने लोकसभा चुनाव में पहली बार रणकौशलात्मक भागीदारी की थी। चुनाव के नतीजे भी सामने आ चुके हैं। चुनाव में भाजपा ने पूँजीपजियों के पुरज़ोर समर्थन से, आरएसएस के व्यापक नेटवर्क और ईवीमएम के हेरफेर से प्रचण्ड बहुमत के साथ जीत हासिल की। हालाँकि जनता में इस जीत के प्रति संशय का माहौल बना हुआ है। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का चुनाव में यह भागीदारी रणकौशलात्मक हस्तक्षेप था जिसके तहत चुनाव प्रचार के दौरान पार्टी ने समाजवादी कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार किया और जनता के बीच पूँजीवादी चुनावी पार्टियों और पूँजीपतियों के रिश्ते का भी भण्डाफोड़ किया लेकिन अभी छोटा संगठन होने के कारण हमारा प्रचार एक सीमित आबादी तक ही पहुँच सका। साथ ही पार्टी ने मज़दूर वर्ग के स्वतंत्र पक्ष के रूप में ख़ुद को पेश किया। चुनाव प्रचार में देश के विभिन्न हिस्सों में पार्टी को मज़दूरों, ग़रीब किसानों, रेहड़ी-खोमचा लगाने वाले, छोटे दुकान वाले और आम नौकरीपेशा लोगों में अच्छा समर्थन मिला और इस दौरान कई इलाक़ों में पार्टी की छोटी वालण्टियर कोर भी खड़ी हो गयी है। हमें अपने प्रचार और प्राप्त हुए वोटों की संख्या का मूल्यांकन करना होगा, इस प्रचार के दौरान सामने आये सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर भी बात करनी होगी ताकि हम आने वाले दौर में इस रणकौशलात्मक हस्तक्षेप को और अधिक कारगर बना सकें। हमने चार राज्यों में सात सीटों पर भागीदारी की। वोट के लिहाज़ से पहला चुनाव लड़ रही पार्टी का अहमदनगर, महराजगंज, कुरुक्षेत्र और उत्तर-पश्चिमी दिल्ली में सन्तोषजनक प्रदर्शन था। हालाँकि जनसमर्थन को केवल वोट के ज़रिये नहीं मापा जा सकता है।

उत्तर-पश्चिमी दिल्ली व उत्तर-पूर्वी दिल्ली सीट पर भागीदारी

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की उम्मीदवार अदिति को उत्तर-पश्चिमी दिल्ली सीट पर 1464 वोट मिले और उत्तर-पूर्वी दिल्ली से योगेश को 544 वोट ही मिले। उत्तर-पश्चिमी दिल्ली में एक बहुत बड़ी आबादी ने अदिति और पार्टी के प्रचार को स्वीकार किया परन्तु यह समर्थन वोट में नहीं झलका। यह पूँजीवादी चुनाव में सम्भव भी नहीं है क्योंकि इस चुनाव में वोट को पैसे, दारू और मुर्गा खिलाकर, जाति-धर्म के आधार पर बाँटकर खरीदा जाता है। एक बहुत बड़ी आबादी यह भी सोचती है कि मज़दूर पार्टी वाले बात तो सही कह रहे हैं लेकिन ये लोग चुनाव में जीतेंगे तो है नहीं, तो अपना वोट "बर्बाद" क्यों किया जाये। लेनिन ने भी कहा था कि वोट जनसमर्थन का सही बैरोमीटर नहीं है और असल में किसी पार्टी को कितना जनसमर्थन प्राप्त है यह जनआन्दोलनों, हड़तालों और पार्टी द्वारा चलाये जनअभियानों में जनता की भागीदारी से तय होता है।

साथ ही यह बात भी ग़ौर करने लायक है कि उत्तर बवाना औद्योगिक क्षेत्र, शाहाबाद डेरी, भीम नगर व अनेक मज़दूर वर्गीय रिहायश में एक बड़ी आबादी का दिल्ली का वोट ही नहीं है। मेहनतकशों की एक आबादी मतदान के दिन भी फैक्टरियों में, घरों में काम कर रही थी। निश्चित ही हमारा प्रचार भी अभी व्यापक नहीं था और हम पूरे निर्वाचन क्षेत्र में नहीं पहुँच पाए। कुल 10 विधानसभा क्षेत्रों में से हम 5 विधानसभा में प्रचार कर पाये जिसमें भी सघन तौर पर हम दो विधानसभाओं के कुछ क्षेत्रों में प्रचार अभियान चला पाये। लेकिन धनबल, बाहुबल, जाति-धर्म की राजनीति के बीच हमने मज़दूर वर्ग के स्वतंत्र पक्ष को मज़बूती से रखा और एक बड़ी आबादी ने हमें समर्थन भी दिया।

हमें अनेक मज़दूर यूनियनों व जनसंगठनों का भी समर्थन मिला। दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन, दिल्ली आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन और बवाना औद्योगिक क्षेत्र मज़दूर यूनियन ने खुलकर हमें समर्थन दिया।

उत्तर-पूर्वी दिल्ली लोकसभा क्षेत्र से भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के उम्मीदवार योगेश खड़े हुए थे। यह राजधानी दिल्ली का सबसे घनी आबादी वाला लोकसभा क्षेत्र है। इस क्षेत्र में अनुमानतः 60 फ़ीसदी मज़दूर आबादी रहती है और इसमें भी लगभग 95 फ़ीसदी ठेका मज़दूर हैं। इस क्षेत्र में कई छोटे-छोटे लघु उद्योग सीलमपुर, जाफ़राबाद, करावल नगर, बुराड़ी, मुस्तफ़ाबाद, मौजपुर, खजूरी इलाकों में हैं। पार्टी का प्रचार भी इस वर्ग पृष्ठभूमि के चलते सीलमपुर चौक, खजूरी चौक के आसपास पर केन्द्रित रहा। RWPI ने मज़दूर आबादी और निम्नमध्यम वर्गीय आबादी के बीच अपने चुनावी प्रचार में ठेका प्रथा समाप्त करने, न्यूनतम मज़दूरी 20,000 रुपये करने और रोज़गार गारण्टी क़ानून पारित करने व अन्य मज़दूरवर्गीय माँगों को ज़ोरदार ढंग से उठाया। पार्टी के उम्मीदवार योगेश को इलाके के बादाम मज़दूरों का व्यापक समर्थन मिला परन्तु अधिकतर बादाम मज़दूरों के पास मतदाता पहचान पत्र है ही नहीं। करावलनगर मज़दूर यूनियन और दिल्ली आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन ने लोकसभा चुनाव में हमारा समर्थन किया। इस क्षेत्र में हमारा प्रचार अधिक व्यापक नहीं था जिस कारण वोट की संख्या भी सापेक्षत: कम रही।

महाराष्ट्र में उत्तर-पूर्वी मुम्बई और अहमदनगर से भागीदारी

महाराष्ट्र के उत्तर पूर्वी मुम्बई से बबन सोपान ठोके उम्मीदवार थे। बबन को 344 वोट पड़े । उत्तर पूर्वी लोकसभा क्षेत्र में छह विधानसभा क्षेत्र आते है जो कि मानखुर्द शिवाजी नगर ,भांडुप, विक्रोली, मुलुंड, घाटकोपर ईस्ट व घाटकोपर वेस्ट हैं । पार्टी की तरफ से मानखुर्द, शिवाजी नगर और भांडुप के एक क्षेत्र में अभियान चलाया गया। शिवाजी नगर के लल्लू भाई कम्पाउण्ड, साठे नगर, ज़ाकिर हुसैन नगर, पीएमजीपी कॉलोनी, बैगनवाड़ी, मंडला और भाण्डुप के सोनापुर इलाके में घर-घर जाकर अभियान चलाया गया। ये इलाके निम्न मध्यम वर्ग और झुग्गी बस्तियों के इलाके हैं। मुम्बई की सबसे बड़ी झोपड़पट्टी मानखुर्द गोवंडी और भाण्डुप मुलुण्ड दोनों ही इस लोकसभा क्षेत्र में आते हैं। इन इलाक़ों में स्थानीय मुद्दे जैसे कि अस्पताल बनवाने, देवनार और मुलुण्ड में स्थित डम्पिंग ज़ोन को हटाने, बायो वेस्ट ट्रीटमेंट प्लाण्ट हटाने जैसी समस्याओं को भी विशेष तौर पर उठाया गया। इतनी छोटी-सी अवधि में एक बड़े लोकसभा क्षेत्र के बहुत सारे इलाके तक हम नहीं पहुँच पाये।

अहमदनगर से संदीप लक्ष्मण शकट चुनाव में खड़े हुए थे जिन्हें 3740 वोट मिले। अहमदनगर शहर के सिद्धार्थ नगर, राम वाड़ी, गोकुल वाडी, मालेगाँव, विंसन पुरा के साथ उपनगर इलाक़ों कों में सवेरी, वाणी नगर, यशोदा नगर, श्रमिक नगर आदि में प्रचार अभियान चलाया गया। इस मतदान क्षेत्र में 8 तालुकों के गाँव पड़ते हैं। परन्तु एक छोटी टीम होने के कारण हम सिर्फ 5 तालुकों तक ही जा सके। हालाँकि लम्बे समय से सुधारों की गतिविधियों व पिछले साल अहमदनगर पालिका में एक सीट पर चुनाव लड़ने के कारण एक आबादी हमसे पहले से ही परिचित थी। कुल मिलाकर इस सीट पर भी हम व्यापक प्रचार नहीं कर पाये।

हरियाणा में कुरुक्षेत्र व रोहतक लोकसभा क्षेत्र से भागीदारी

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने कुरुक्षेत्र व रोहतक सीटों पर भागीदारी की। हरियाणा में ग़रीब किसानों, खेत मज़दूरों, मनरेगा मज़दूरों, औद्योगिक श्रमिकों और नौजवान आबादी को केन्द्र में रखते हुए समाजवादी कार्यक्रम का दोनों ही लोकसभा क्षेत्रों में प्रचार-प्रसार किया गया। दोनों ही लोकसभा क्षेत्रों में हज़ारों की संख्या में पर्चे बाँटे गये, सैकड़ों नुक्कड़ सभाएँ और गली-बैठकें आयोजित की गयी। जनसम्पर्क अभियानों के दौरान शिक्षा-स्वास्थ्य-रोज़गार-आवास-खेती-मज़दूरी आदि से जुड़े बहुत सारे नये पहलू कार्यकर्ताओं की नज़र में आये।

कुरुक्षेत्र लोकसभा क्षेत्र में पार्टी का प्रचार अभियान मुख्यतः खेतिहर आबादी और मनरेगा मज़दूरों के बीच केन्द्रित रहा। यहाँ से पार्टी के उम्मीदवार रमेश खटकड़ थे। इस लोकसभा क्षेत्र में 1467 वोट हासिल हुए। प्रचार अभियान का ज्यादा ज़ोर कलायत और कैथल विधानसभा क्षेत्रों में केन्द्रित रहा क्योंकि यहाँ पर RWPI से जुड़े साथी पिछले लम्बे समय से विभिन्न जन संगठनों के माध्यम से सामाजिक-राजनीतिक काम करते रहे हैं। निश्चित तौर पर मज़दूर पार्टी को जनता के बीच मज़बूत विकल्प के तौर पर उभरने में अभी समय लगेगा लेकिन जहाँ भी प्रचार टीम गयी लोगों ने पार्टी के एजेण्डे का खुलकर समर्थन किया। आने वाले समय में और व्यापक ढंग से पार्टी के समाजवादी कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार किया जायेगा।

रोहतक से पार्टी के उम्मीदवार इन्द्रजीत थे। यहाँ वोटों की संख्या अपेक्षाकृत कम रही। रोहतक से पार्टी को कुल 277 वोट प्राप्त हुए। दरअसल RWPI से जुड़े कार्यकर्ताओं का इस क्षेत्र में जन कार्य लगभग विश्वविद्यालय केन्द्रित ही रहा है। किन्तु जैसा कि लेनिन ने कहा है कि चुनावों के दौरान क्रान्तिकारियों को अपना समाजवादी एजेण्डा लोगों के बीच ले जाने से चूकना नहीं चाहिए। इसी मकसद से यहाँ पर भी चुनावों में मेहनतकश जन पक्षीय विकल्प प्रस्तुत करने के मकसद से भागीदारी की गयी थी। आगे जैसे ही पार्टी के जनकार्य यहाँ गति पकड़ेंगे तो जनाधार निश्चित रूप से बढ़ेगा।

उत्तर प्रदेश में महराजगंज लोकसभा क्षेत्र में भागीदारी

संसदीय चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी के तहत उत्तर प्रदेश के महराजगंज लोकसभा क्षेत्र से आरडब्ल्यूपीआई ने प्रमोद कुमार को उम्मीदवार बनाया था। प्रमोद को कुल 2236 वोट मिले। प्रचार अभियान देर से शुरू हो पाने की वज़ह से प्रचार कार्य एक छोटे इलाक़े में ही केन्द्रित रहा। गोरखपुर और नेपाल के बीच पड़ने वाला महाराजगंज ज़िला उद्योग धन्धों को सस्ता श्रम उपलब्ध कराने वाली बेल्ट का हिस्सा है। जिस ग्रामीण इलाक़े को केन्द्रित करके आरडब्ल्यूपीआई ने चुनाव प्रचार किया, उन गाँवों में लगभग हर परिवार से कोई न कोई सदस्य बाहर जाकर मज़दूरी करता है। महराजगंज और आसपास के इलाक़ों में उद्योग-धन्धे नहीं के बराबर हैं। जो चीनी मिलें और अन्य छोटे-मोटे उद्योग थे भी वो बरसों से बन्द पड़े हैं। इसी लोकसभा क्षेत्र में स्थित फरेन्दा में गणेश सुगर मिल, निचलौल के पास गडौरा में भी इसी तरह से चीनी मिल बन्द पड़ी है। चेहरी में कई सौ एकड़ का सरकारी फ़ार्म बेकार पड़ा है। इनको चालू करवाना किसी भी बुर्जुआ चुनावबाज़ पार्टी के लिए चुनावी वायदे में भी शामिल नहीं था। योगी सरकार ने सत्ता में आने के बाद खाद कारख़ाने का उद्घाटन कर दिया लेकिन अभी भी वो कारख़ाना चालू होने का इन्तज़ार कर रहा है। इन बन्द पड़े कारख़ानों में काम करने वालों के करोड़ों रुपये बकाया हैं। मशीनें, सैकड़ों एकड़ ज़मीन, इन्फ्रास्ट्रक्चर आदि पूँजीवादी विकास के मॉडल की भेंट चढ़ गया है। खेती-किसानी की हालत यह है कि पूरे क्षेत्र में हार्वेस्टर-कम्बाइन जैसी मशीनों का व्यापक इस्तेमाल होता है जिसकी वजह से खेती-किसानी के मौसम में भी लोगों को काम नहीं मिलता है। दिल्ली, मुम्बई, पंजाब, हरियाणा से लेकर खाड़ी देशों तक जाकर हाड़तोड़ मेहनत करने वाली आबादी का परिवार जीवन की बहुत बुनियादी सुविधाओं से भी महरूम है। छोटी-छोटी बीमारियों के इलाज के लिए लोगों को 50-100 किमी की दूरी तय करके गोरखपुर जाना पड़ता है। इलाक़े के जो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र कभी खुलते भी हैं, वहाँ भी न तो डॉक्टर हैं, न जाँच उपकरण और न ही दवाइयाँ। आरडब्ल्यूपीआई द्वारा उठाये गये शिक्षा, चिकित्सा, रोज़गार और न्यूनतम मज़दूरी के मुद्दों को जनता का व्यापक समर्थन मिला। बहुत सी महिलाओं ने आरडब्ल्यूपीआई के प्रचार कार्य को आगे बढ़ाने के लिए सभाओं के दौरान सहयोग के डिब्बों में पैसे डाले। बहुत से युवाओं और नागरिकों ने नम्बर दिये। बाज़ारों में प्रचार के दौरान बहुत से रेहड़ी-खोमचा लगाने वालों, सड़क किनारे दुकान लगाने वालों का कहना था कि इस तरह का प्रचार उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। पूरे अभियान के दौरान एक जगह पर कुछ लोगों ने सीधे पैसे की माँग की। बाक़ी सभी जगहों पर लोगों ने बात सुनने के बाद ख़ुद ही आगे बढ़कर सहयोग किया।

एक समय ऐसा भी था जब इस पूरे इलाक़े में कम्युनिस्ट आन्दोलन की ज़मीन थी। कई गाँवों में जाने पर आरडब्ल्यूपीआई के कार्यकर्ताओं के पहुँचते ही लोगों ने लाल झण्डा देखकर घेर लिया। ये वो गाँव थे जहाँ कम्युनिस्टों ने ज़मींदारों की ज़मीन पर क़ब्ज़ा करके दलित और पिछड़ी जातियों को बसाया था। कम्युनिस्ट पार्टियों के संशोधनवादी होने के कारण वह जनाधार खिसक कर बसपा, सपा जैसी पार्टियों के जनाधार में तब्दील हो गया। कम्युनिस्टों के संघर्ष से अनुपस्थित होने के कारण ऐसे भी गाँव मिले जो कि कम्युनिस्टों द्वारा ज़मीन कब्ज़ा करके बसाये गये थे। बाद में बड़े कुलकों से उसे कोर्ट से ख़ाली करवा लिया।

आरडब्ल्यूपीआई के प्रचार अभियान की शुरुआत होते ही पूँजीवादी पार्टियों ने योजनाबद्ध तरीक़े से उन इलाक़ों में, जिसमें आरडब्ल्यूपीआई का प्रचार था, पहले तो यह शोर मचाना

(पेज 12 पर जारी)

मोदी सरकार की वापसी : मेहनतकश जनता पर नये कहर की शुरुआत

(पेज 1 से आगे)

जीएसटी जैसी विनाशकारी नीतियों और महँगाई, बेरोज़गारी में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी के कारण के कारण जनता की तबाही अपनेआप राजनीतिक असन्तोष और मोदी के विरुद्ध मतदान में तब्दील हो जायेगा। इसे समझने के लिए हमें लेनिन की वह बात याद करनी चाहिए कि अन्ततः राजनीति निर्णायक होती है, न कि अर्थशास्त्र। दोनों के बीच बेशक़ रिश्ता होता है, लेकिन आर्थिक कारकों का असर राजनीतिक रूप से प्रकट हो, यह बहुत से कारकों पर निर्भर करता है।

इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि मौजूदा चुनावी नतीजों का तार्किक विश्लेषण किया जाय और फ़ासीवाद को हराने की ठोस रणनीति बनायी जाये। पिछले पाँच वर्षों में मज़दूरों, किसानों, युवाओं, दलितों, स्त्रियों व आदिवासियों की अभूतपूर्व तबाही के बावजूद, मोदी सरकार को फिर से चुनाव में विजय प्राप्त होने के कारणों का विश्लेषण आवश्यक है, ताकि क्रान्तिकारी ताक़तें आने वाले पाँच वर्षों में फ़ासीवादी हमलों से निपटने और अन्ततः फ़ासीवादी उभार को परास्त करने की दूरगामी रणनीति पर कारगर तरीके से काम कर सकें।

आर्थिक असन्तोष अपनेआप राजनीति असन्तोष में तब्दील नहीं होता। इसके लिए समाज में कोई ऐसी राजनीतिक ताक़त होनी चाहिए जो बिखरे हुए आर्थिक असन्तोष को संगठित राजनीतिक प्रतिरोध में बदल सके। ऐसी राजनीतिक शक्ति के अभाव में नतीजे बिल्कुल उलट हो सकते हैं। ऐसी राजनीतिक शक्ति के बिना, जनता का, ख़ासकर निम्न मध्यवर्ग का बिखरा हुआ आर्थिक असन्तोष उन्हें फ़ासीवादी प्रतिक्रिया की गोद में भी धकेल सकता है। जैसाकि हमने इस चुनाव में देखा।

चूँकि भारत में इस समय ऐसी कोई ताक़त मौजूद नहीं है जो जनसाधारण के बिखरे हुए आर्थिक असन्तोष को एक मज़बूत राजनीतिक प्रतिरोध में ढाल सके, इसलिए भाजपा लोगों को अन्धराष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता की लहर में बहाने में सफल रही और मोदी सरकार की आर्थिक नीतियों के कारण पाँच वर्षों में बेपनाह आर्थिक परेशानियाँ झेलने के बावजूद जनता के एक बड़े हिस्से ने मोदी को फिर वोट दे दिया।

मोदी की जीत के पीछे दूसरा सबसे बड़ा कारण है लगभग समूचे बड़े पूँजीपति वर्ग का एकमत समर्थन। एक बार फिर से साबित हुआ है कि पूँजीवादी जनवाद के तहत चुनावों में अन्ततः विजय उसी की होती है, जिसके पीछे बड़े पूँजीपति वर्ग का समर्थन होता है। हम सभी जानते हैं कि पिछले पाँच वर्षों में भारत के सभी बड़े पूँजीवादी घरानों ने भाजपा को सर्वाधिक चन्दा दिया है। यह राशि हज़ारों करोड़ में है। ज्ञात तौर-तरीक़ों के अलावा चुनावी बॉण्डों के ज़रिये भी देशी-विदेशी पूँजीपति अपनी पूरी आर्थिक शक्तिमत्ता के साथ भाजपा के पीछे खड़े थे। अन्य पूँजीवादी दल भी इस दौड़ में कहीं पीछे छूट गये।

सेंटर फ़ॉर मीडिया स्टडीज़ की रिपोर्ट के अनुसार इस लोकसभा चुनाव में कुल 60,000 करोड रुपये ख़र्च हुए जिसमें भाजपा ने अकेले 27,000 करोड़ रुपये ख़र्च किये। यह रकम बाक़ी सभी पार्टियों के कुल ख़र्च से भी बढ़कर है। पूँजीपतियों की थैलियों के दम पर भाजपा ने बुर्जुआ मीडिया को अपने भोंपू में पहले ही बदल डाला था, इस चुनाव में उसे मीडिया का भरपूर फ़ायदा मिला। जब जनता ग़रीबी, बेरोज़गारी, महँगाई और भ्रष्टचार से थकी और बेहाल हो, उसमें वर्ग चेतना का अभाव हो, और उनके बीच सच्चाई को उजागर करने वाली कोई मज़बूत शक्ति मौजूद न हो, तो ऐसे में झूठ और प्रोपेगैण्डा को लगातार दोहराये जाना बहुत असरकारी हो जाता है। पूरा सरकारी और कॉरपोरेट मीडिया मोदी की अगुवाई में फ़ासिस्टों के आगे साष्टांग दण्डवत था। मीडिया की बेहयाई और धोखाधड़ी भारत के इतिहास में इतनी नंगई के साथ कभी नहीं दिखायी दी थी। पिछले सात दशकों के दौरान आर.एस.एस. ने राज्य मशीनरी और मीडिया में व्यवस्थित ढंग से जो घुसपैठ की है, उसका पूरा लाभ उसे अब मिल रहा है। सिर्फ़ मोदी-शाह की जोड़ी द्वारा मीडिया को ख़रीदने का ही यह नतीजा नहीं है, बल्कि मीडिया में संघ के वैचारिक और राजनीतिक वर्चस्व ने उसे इस हाल में पहुँचाया है।

चुनाव प्रचार में, वोटों की खरीद-फ़रोख्त में, फ़र्ज़ी उम्मीदवार खड़ाकर अपने विरोधी के वोट काटने में, पैसे और दारू बँटवाने में, ईवीएम के साथ बेहद संठित तरीक़ों से छेड़छाड़ करवाने या बदलवाने में, नौकरशाहों और न्यायपालिका तक को ख़रीदने में और धमकाने में बड़े पैमाने पर पैसों की ज़रूरत होती है। भाजपा के पास जितना धनबल है, भारतीय पूँजीवादी जनवाद के पूरे इतिहास में किसी भी पूँजीवादी दल के पास ऐसा धनबल नहीं रहा है। भाजपा इस धनबल के बूते उपरोक्त सभी तिकड़मों को अंजाम देने में सफल रही है। वहीं कांग्रेस, सपा-बसपा गठबन्धन, तृणमूल कांग्रेस आदि जैसे तमाम दल इस दौड़ में कहीं दिखायी नहीं पड़ते। धनबल के अलावा इसमें एक कारण भाजपा का सुसंगठित फ़ासीवादी तंत्र, संगठन और कार्यसंस्कृति भी है। लेकिन सबसे बड़ा कारक भाजपा को बड़े पूँजीपति वर्ग का एकमत समर्थन ही है। इस एकमत समर्थन का कारण पूरी दुनिया भर में पूँजीवादी व्यवस्था का संकट है जो कि मुनाफ़े की गिरती दर में प्रकट हो रहा है। मुनाफ़े की दर को बढ़ाने के लिए पूँजीपति वर्ग पूरी दुनिया में मज़दूर वर्ग की मज़दूरी को घटाने, काम के घण्टों को क़ानूनी या ग़ैर-क़ानूनी तरीक़ों से बढ़ाने और श्रम की सघनता को बढ़ाने का प्रयास कर रहा है। पूँजीपति वर्ग को पता है कि इन प्रयासों के विरुद्ध मज़दूर वर्ग चुप नहीं बैठेगा और प्रतिरोध व आन्दोलन करेगा। ऐसे में, पूँजीपति वर्ग को तमाम देशों में ऐसी सत्ता की ज़रूरत है जो कि तानाशाहाना तरीके से इस प्रतिरोध को कुचले और जनता को आपस में बाँटकर प्रतिरोध को बिखरा दे। यही कारण है कि पूँजीपति वर्ग अमेरिका, तुर्की, फिलिप्पींस, इण्डोनेशिया, यूनान, हंगरी और साथ ही भारत जैसे तमाम देशों में धुर दक्षिणपंथी व फ़ासीवादी शक्तियों को अपना एकमत समर्थन दे रहा है। भाजपा को भी इसी वजह से समूचे कारपोरेट जगत से भारी वित्तीय समर्थन प्राप्त हुआ है।

भाजपा की जीत का तीसरा प्रमुख कारण है इस पार्टी का अन्य पूँजीवादी पार्टियों से अन्तर – यह कोई सामान्य पूँजीवादी पार्टी नहीं है, बल्कि एक फ़ासीवादी पूँजीवादी पार्टी है। इसके पीछे काडरों का एक विशाल ढाँचा है, जिसे हम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नाम से जानते हैं। फ़ासीवादी विचारधारा पर आधारित यह काडर ढाँचा भाजपा की सबसे बड़ी शक्ति है। अन्य तमाम पूँजीवादी दल, चाहे वह कांग्रेस हो, सपा-बसपा हो, राकांपा हो या तृणमूल, तेदेपा आदि हों, वे एक सचेतन विचारधारा पर आधारित और काडर-आधारित पार्टियाँ नहीं हैं। यही कारण है कि उनका सांगठनिक ढाँचा कभी भी भाजपा व संघ परिवार के सांगठनिक ढाँचे जितना अनुशासित और प्रभावी नहीं हो सकता है। भाजपा अपने अन्धराष्ट्रवादी और साम्प्रदायिक प्रचार को जितनी प्रभाविता से तृणमूल धरातल पर पहुँचा सकती है, कोई सामान्य पूँजीवादी दल उतनी प्रभाविता से यह कार्य आम तौर पर नहीं कर पाता है। भाजपा का प्रचार तंत्र असफल तब होता है, जबकि विभिन्न वस्तुगत और मनोगत कारकों के चलते, मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी और साथ ही आम मध्य वर्ग की आर्थिक बदहाली और तबाही उनके राजनीतिक मत को निर्धारित करने लगती है। यानी कि जब जनता अपने हालात के प्रति राजनीतिक तौर पर सचेत हो और इस चेतना को प्रभावी बनाने वाली राजनीतिक शक्तियाँ मौजूद हों। विपक्षी पूँजीवादी दल यह काम करने में इस बार पूरी तरह असफल रहे, हालाँकि ऐसा करने की वस्तुगत शर्तें मौजूद थीं। वे असफल क्यों रहे, इसका सबसे प्रमुख कारण बड़े पूँजीपति वर्ग के समर्थन का अभाव था, जिस पर हम ऊपर बात कर चुके हैं, लेकिन साथ ही एक काडर-आधारित ढाँचे का अभाव भी इसमें एक भूमिका निभाता है।

मोदी की जीत की चौथी ख़ास बात सशस्त्र बलों, पुलिस, नौकरशाही और न्यायपालिका सहित राज्य तंत्र के सभी अंगों में संघ की गहरी और व्यवस्थित घुसपैठ का नतीजा है। चुनाव के दौरान निर्वाचन आयोग, सुप्रीम कोर्ट, पुलिस से लेकर सशस्त्र बलों तक का भाजपा के पक्ष में किया गया आचरण सभी के सामने है। सबने देखा कि किस तरह से राज्य के ये संस्थान भाजपा की जीत के लिए खुलकर काम कर रहे थे। ईवीएम में छेड़छाड़ के अनेक गहरे सन्देहों की जाँच करने से लेकर मोदी-शाह द्वारा चुनाव आचार संहिता के खुले उल्लंघन पर कार्रवाई नहीं करने तक से ज़ाहिर था कि ईवीएम ही नहीं, पूरा चुनाव आयोग ही हैक हो चुका है। उल्लेखनीय है कि केवल तीन पक्षों ने वीवीपैट पर्चियों के 100 प्रतिशत मिलान का विरोध किया – भाजपा, चुनाव आयोग और सुप्रीम कोर्ट! वीवीपैट मशीनों पर हज़ारों करोड़ ख़र्च करने के बावजूद, चुनाव आयोग ने 50 प्रतिशत पर्चियों का मिलान करने, या वीवीपैट को पहले गिनने की हर माँग को ठुकरा दिया।

बेशक़, इन धाँधलियों के बिना भाजपा शायद अपने दम पर बहुमत न हासिल कर पाती। फिर भी हो सकता है कि वह सबसे बड़ा दल बनकर आती और दूसरी पार्टियों के साथ मिलकर सरकार बना लेती। लेकिन तब मोदी-शाह की जोड़ी के लिए आगे की राह इतनी आसान नहीं होती।

इस चुनाव की पाँचवी विशेषता इक्कीसवीं सदी में फ़ासीवाद के उभार की ख़ासियतों को दर्शाती है। पिछले सत्तर वर्षों में संघ परिवार ने समाज की पोर-पोर में जो अपनी घुसपैठ बनायी है, वह अब रंग ला रही है। भारत में हिन्दुत्व फ़ासीवाद का उभार कई प्रक्रियाओं का नतीजा है जो अक्सर साथ-साथ चलती रही हैं। पहली प्रक्रिया 1910 से लेकर 1940 तक चली जिसमें सावरकर, हेडगेवार और फिर गोलवलकर द्वारा फ़ासीवाद के हिन्दुत्व अवतार की वैचारिक बुनियाद रखी गयी। इसके साथ ही 1920 के दशक से दूसरी प्रक्रिया शुरू हुई जिसमें एक मज़बूत काडर-आधारित संगठन खड़ा किया गया। यह प्रक्रिया 1940 के दशक में मुकम्मल हो चुकी थी हालाँकि इसमें लगातार इज़ाफ़ा होता रहा है। तीसरी प्रक्रिया है आर.एस.एस. द्वारा संस्थाओं का विकास जिनके ज़रिये वह समाज में मिथकों को कॉमन सेंस के रूप में स्थापित करके, मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों के रूप में एक नकली दुश्मन खड़ा करके समाज में एक साम्प्रदायिक फासिस्ट आम सहमति तैयार करता है। शाखाओं, स्कूलों, सांस्कृतिक संस्थाओं, प्रकाशनों आदि का व्यापक नेटवर्क 1930 के दशक में शुरू हुई इसी प्रक्रिया का नतीजा है। चौथी प्रक्रिया 1920 में ख़ुद संघ की स्थापना के साथ शुरू हुई थी। यह प्रक्रिया संघ द्वारा व्यापारिक टुटपूँजिया वर्ग के बीच छोटे मगर मज़बूत समर्थन आधार के निर्माण की प्रक्रिया थी। लेकिन आज़ादी के पहले संघ के लिए निम्न पूँजीपति वर्ग का प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन खड़ा कर पाना सम्भव नहीं था क्योंकि निम्न पूँजीपति वर्ग की व्यापक आबादी कांग्रेस के नेतृत्व में आज़ादी की लड़ाई का समर्थन कर रही थी जिससे आर.एस.एस; ने हमेशा दूरी बनाये रखी और अंग्रेज़ हुकूमत से साँठगाँठ करते रहे। आज़ादी के बाद भी महात्मा गाँधी की हत्या के कारण आर.एस.एस. 1960 के दशक की शुरुआत तक लगभग समाज के हाशिए पर ही रहा। 1962 के भारत-चीन युद्ध के समय कम्युनिस्ट-विरोधी प्रचार के साथ ही संघ की किस्मत बदलने लगी। कांग्रेस की सरकार भी इससे खुश थी और उसने आर.एस.एस को कम्युनिस्टों के विरुद्ध अपना गन्दा कुत्सा-प्रचार चलाने की खुली छूट दी। फिर 1967 में राज्यों में ग़ैर-कांग्रेसी सरकारें बनने के साथ आर.एस.एस. वापस मुख्यधारा की राजनीति में लौट आया जिसका श्रेय राममनोहर लोहिया के नेतृत्व में सोशलिस्टों को जाता है। 1970 के दशक की शुरुआत से संघ ने निम्न पूँजीपति वर्ग का प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन खड़ा करने के प्रयास शुरू कर दिये थे लेकिन उनकी कोशिशों का नतीजा 1980 के दशक की शुरुआत में सामने आने लगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था को 1980 के दशक में अपनी चपेट में लेने वाला आर्थिक संकट सार्वजनिक क्षेत्र के पूँजीवाद का संकट था। जिस राज्य एकाधिकारी पूँजीवाद ने जनता के पैसों से खड़े किये गये सार्वजनिक क्षेत्र की बदौलत भारत के निजी पूँजीपति घराने अपने पैरों पर खड़े हो सके थे, वही अब उनके लिए बाधा बनने लगे था। निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था को नेहरू काल के आर्थिक ढाँचे से मुक्त करने और निजी पूँजीपतियों को खुली छूट देने का जो दौर शुरू हुआ उसी समय संघ परिवार का प्रभाव तेज़ी से बढ़ा। 1986 से शुरू होकर 1992 में बाबरी मस्जिद के ढहने तक चला राम जन्मभूमि आन्दोलन भारत में हिन्दुत्ववादी फ़ासीवाद के तीव्र उभार का पहला दौर था। तीव्र उभार का दूसरा दौर था मोदी की अगुवाई में 2002 का गुजरात जनसंहार। तीसरा ऐसा दौर आया 2011 में हुए तथाकथित भ्रष्टाचार-विरोधी आन्दोलन के साथ जिसमें अन्ना हज़ारे ने संघ की कठपुतली की भूमिका निभायी और अरविन्द केजरीवाल जानबूझकर संघ

(पेज 13 पर जारी)

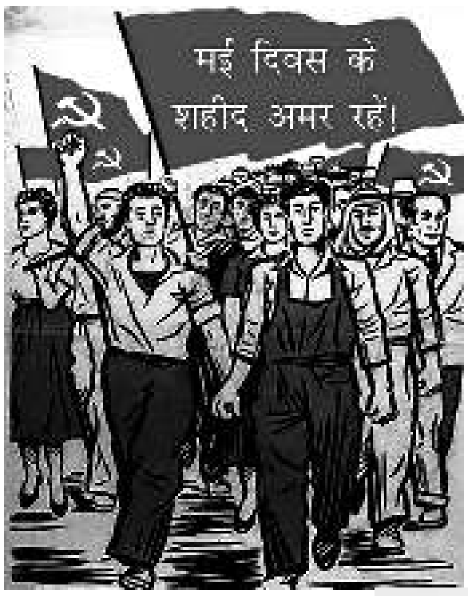

"मई दिवस बन जाये हर दिन साल का, यह सोच कर तैयारियाँ करने लगें हम फिर"

इंक़लाबी जोश-ओ-ख़रोश के साथ मज़दूरों ने दी शिकागो के शहीदों को श्रद्धांजलि

'बिगुल मज़दूर दस्ता' और 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (आरडब्ल्यूपीआई) के संयुक्त तत्वावधान में बरगदवाँ औद्योगिक इलाक़े में अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस पर सभा का आयोजन किया गया। सभा के दौरान नुक्कड़ नाटक 'मशीन' तथा क्रान्तिकारी गीतों – 'हल्ला बोल', 'हम मेहनतकश जग वालों से जब अपना हिस्सा माँगेंगे', 'ग़र थाली आपकी ख़ाली है' आदि की प्रस्तुति की गयी। सभा के बाद फ़र्टिलाइज़र स्थित शिव मन्दिर से बरगदवाँ औद्योगिक इलाक़े से होते हुए वी.एन. डायर्स कपड़ा मिल तक जुलूस निकाला गया। प्रसेन ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस '8 घण्टे काम, 8 घण्टे आराम, 8 घण्टे मनोरंजन' के आन्दोलन से पैदा हुआ। 8 घण्टे के कार्यदिवस के आन्दोलन में मज़दूरों ने धर्म, नस्ल, क्षेत्र आदि का भेद मिटाकर अपनी वर्गीय एकता क़ायम की और शिकागो की लगभग 11000 फ़ैक्टरियों में मज़दूरों ने एक साथ हड़ताल की। मज़दूर वर्ग का ऐतिहासिक मिशन पूँजीवादी राज्यस्ता का ध्वंस करके मज़दूर राज की स्थापना करना है। आज भारत समेत पूरी दुनिया में मज़दूरों को अपने बीच से नेतृत्व पैदा करना होगा। मज़दूर वर्ग को पूँजीवादी शोषण तन्त्र की गहरी समझ हासिल करनी होगी व इलाक़ा आधारित और पेशागत यूनियन, अध्ययन मण्डल, पुस्तकालय, मोहल्ला कमेटियाँ आदि संस्थाएँ बनानी होंगी।

बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से अम्बेडकरनगर के अराजी देवारा (हंसू का पुरवा) गाँव में मई दिवस की पूर्व सन्ध्या पर सभा का आयोजन किया गया। सभा में विभिन्न मुद्दों पर बातचीत की गयी तथा नुक्कड़ नाटक 'मशीन' का मंचन किया गया। बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से ग्रामीण मज़दूर यूनियन के निर्माण की पहल इसी दिशा में एक शुरुआती क़दम है।

साबितपुर गाँव में मई दिवस का कार्यक्रम किया गया। साबितपुर की ज़्यादातर आबादी दिहाड़ी या भट्ठा मज़दूर हैं। यह आबादी इस पूँजीवादी व्यवस्था के नर्क से परिचित तो है लेकिन राजनीतिक जागरूकता के अभाव में इन मज़दूरों का कोई संगठित संघर्ष नहीं है।

मुबारक़पुर पिकार गाँव में नुक्कड़ सभा व पर्चा वितरण का कार्यक्रम किया गया। सभा में कहा गया कि आज भी 12-16 घण्टे तक हड्डी गलाने के लिए मज़दूर बाध्य हैं। इस मामले में ग्रामीण मज़दूरों की हालत तो और भी बदतर है क्योंकि यहाँ कोई श्रम क़ानून ही नहीं है। अम्बेडकर नगर ज़िले में हज़ारों ईंट भट्ठे हैं। इन ईंट भट्ठों पर काम करने वाले मज़दूरों की हालत का अन्दाज़ा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि रात के 3:00 बजे से मज़दूर और उसका परिवार काम में लग जाता है और दोपहर में खाने व आराम के डेढ़ से 2 घण्टे छोड़ कर रात के 8-9 बजे तक काम करते हैं।

लुधियाना में कारख़ाना मज़दूर यूनियन व टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन द्वारा मज़दूर दिवस सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें बिगुल मज़दूर दस्ता व नौजवान भारत सभा ने भी सहयोग दिया। "मई दिवस के शहीद अमर रहे", "दुनिया के मज़दूरों एक हो", "इन्क़लाब ज़िन्दाबाद" आदि गगनभेदी नारों के साथ सम्मेलन का आरम्भ हुआ। संगठनों के प्रतिनिधियों द्वारा क्रान्तिकारी लाल झण्डा फहराकर शिकागो के शहीदों को सलामी दी गयी। शहीदों की याद में दो मिनट का मौन रखा गया। इसके बाद क्रान्तिकारी सांस्कृतिक मंच, दस्तक ने क्रान्तिकारी गीतों के ज़रिये शहीदों की राह पर चलने का सन्देश दिया। वक्ताओं ने कहा कि अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस कोई रस्म अदायगी का त्यौहार न होकर मज़दूरों के न्यायपूर्ण संघर्ष को आगे बढ़ाने का संकल्प लेने का दिन है। इसी रूप में ही शिकागो के शहीदों को सच्ची श्रदांजलि दी जा सकती है।

टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के राजविन्दर ने कहा कि आज मज़दूरों की संगठित ताक़त न होने के चलते आठ घण्टे दिहाड़ी के क़ानूनी अधिकार सहित बहुतेरे क़ानूनी अधिकार लागू नहीं हो रहे। मज़दूरों को अपनी क्रान्तिकारी विरासत से सीखना होगा और संगठित ताक़त के दम पर अपने अधिकार हासिल करने के लिए आगे आना चाहिए। कारख़ाना मज़दूर यूनियन के अध्यक्ष लखविन्दर ने कहा कि यह झूठ कि पूँजीवादी व्यवस्था में वोटों के ज़रिये ज़िन्दगी बेहतर बन सकती है, आज काफ़ी हद तक जनता के सामने नंगा हो चुका है। यह साबित हो चुका है कि पूँजीवादी व्यवस्था में जनतन्त्र नाम की कोई चीज़ नहीं होती, बल्कि हर जगह पूँजी का ही ज़ोर चलता है। उन्होंने कहा कि मई दिवस का इतिहास गवाह है कि मज़दूर एकजुट होकर ही पूँजी की ताक़त का मुक़ाबला कर सकते हैं।

दिल्ली के बवाना औद्योगिक क्षेत्र के मेट्रो विहार फ़ेज़ 1 में चुनावी सभा रखी गयी। RWPI के सनी ने कहा कि मई दिवस का दिन मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना में छलाँग लगाने का दिन है और शिकागो के महान नायकों और लड़ाका मज़दूरों से सीखने का दिन है जिन्होंने काम के घण्टे आठ करने की माँग को हर मज़दूर तक पहुँचा दिया। मई दिवस यह घोषणा करने का दिन है कि मज़दूर भी इन्सान हैं और उजरत की गुलामी उन्हें एक दिन भी स्वीकार नहीं। हालाँकि आज हमारी माँग काम के घण्टे 6 की होनी चाहिए, क्योंकि शिकागो में उठ खड़े उस आन्दोलन के बाद आज उत्पादकता बेहद बढ़ी है परन्तु वेतन नहीं बढ़ा है बल्कि पहले के मुक़ाबले घट गया है।

•

1 मई मजदूर दिवस के अवसर पर भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी और बिगुल मज़दूर दस्ता ने हरियाणा के चौशाला गाँव में मुख्य चौपाल में कार्यक्रम करते हुए जनता को मई दिवस के इतिहास और मज़दूरों के संघर्षों से अवगत कराया।

•

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी और बिगुल मज़दूर दस्ता की तरफ़ से मई दिवस के अवसर पर मुम्बई के मानखुर्द मज़दूर चौक, साठे नगर, लल्लू भाई कम्पाउण्ड और पीएमजीपी कॉलोनी में 'मशीन' नाटक का मंचन और क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की गयी। साथ ही जनता को मई दिवस के इतिहास से परिचित कराया गया और व्यापक पर्चा वितरण किया गया।

•

मई दिवस की सुबह बिगुल मज़दूर दस्ता की लखनऊ टीम ने आईटी चौराहे से ऐशबाग स्थित तालकटोरा औद्योगिक क्षेत्र तक साइकिल व बाइक रैली निकाली और तालकटोरा औद्योगिक क्षेत्र में कारख़ानों के सामने मज़दूरों की सभाएँ कीं, पर्चा वितरण किया तथा क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किया।

फ़ैक्टरी इलाक़े में फ़ैक्टरियों के बाहर सभाएँ करते हुए बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं ने कहा कि मई दिवस पूरी दुनिया में मज़दूरों के संघर्षों के प्रतीक के रूप में मनाया जाता है। ऐसे में यह अफ़सोस की बात है कि आज के दिन भी तालकटोरा में रोज़ की तरह मज़दूर गाय-गोरू की तरह खट रहे हैं। ऐसा इसलिए मुमकिन हो पाता है क्योंकि मज़दूर आपस में बँटे हुए हैं और उनमें कोई एकजुटता नहीं है। शाम को लखनऊ के खदरा इलाक़े में मई दिवस की रैली निकाली गयी, और जनसभाएँ की गयीं।

•

हरिद्वार के रौशनाबाद में बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा द्वारा नुक्कड़ सभा, पर्चा वितरण, फ़िल्म स्क्रीनिंग और पोस्टरिंग का कार्यक्रम किया गया। नुक्कड़ सभा में बात रखते हुए वक्ताओं ने कहा कि मई दिवस पूरी दुनिया के मज़दूरों की वर्गीय एकजुटता और उनके राजनीतिक संघर्षों व आन्दोलनों का प्रतीक दिवस है। यह मज़दूरों के गरिमामय जीवन,स्वाभिमान और वर्गीय राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्त करने वाला त्योहार है, जिसे दुनियाभर के मज़दूर बड़े ही धूमधाम से मनाते हैं। इस अवसर पर मई दिवस की विरासत पर बनी फ़िल्म 'अभी लड़ाई जारी है' और चार्ली चैपलिन की फ़िल्म 'द मॉडर्न टाइम्स' दिखायी गयी।

मोदी सरकार का दूसरा कार्यकाल : पर्यावरण विनाशक नीतियों के निरंकुश विस्तार और उसके भयावह परिणामों के लिए तैयार रहें

– पावेल पराशर

कुछ महीने पहले वैश्विक पर्यावरण सूचकांक की एक रिपोर्ट आयी जिसके अनुसार दुनिया के 180 देशों में पर्यावरण के क्षेत्र में किये गये प्रदर्शन के आधार पर भारत को 177वाँ पायदान दिया गया। इसके अलावा विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट ने विश्व के 20 सबसे प्रदूषित शहरों की सूची में 15 भारतीय शहरों को रखा। 'हेल्थ इफ़ेक्ट्स इंस्टिट्यूट' के एक अध्ययन के अनुसार साल 2017 में भारत में 12 लाख मौतें वायु प्रदूषण के प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष कारणों की वजह से हुईं ये तो हुई वायु प्रदूषण की बात, इसके अलावा जल संकट और भूजल स्तर में तेज़ी से आती गिरावट से जुड़े कुछ हालिया आँकड़े भी एक भयावह दृश्य की ओर इशारा करते हैं। भारत सरकार के 'नीति आयोग' का यह अनुमान है कि वर्ष 2020 तक ही दिल्ली, बेंगलुरु, चेन्नयी और हैदराबाद सहित देश के 21 शहरों में रहने वाली 10 करोड़ आबादी को भूजल स्तर में भारी कमी का सामना करना पड़ेगा। जल संकट इसी गति से बढ़ता रहा तो 2030 तक देश की 40% आबादी को पेयजल तक मयस्सर नहीं होगा। ये सभी तथ्य व आँकड़े यह बात बिल्कुल साफ़ कर देते हैं कि पर्यावरण का संकट जो पूरे विश्व के सामने आज मुँहबाए खड़ा है, वह भारत में और भी दैत्याकार रूप लेकर एक आपातकालीन संकट का स्वरूप ले चुका है। ऐसे में कोई इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि इस आपातकालीन संकट से जूझने के लिए प्रशासनिक स्तर पर कई गम्भीर और कड़े नीतिगत फ़ैसले लेने की ज़रूरत है।

ऐसे में मोदी सरकार के पहले कार्यकाल का प्रदर्शन और दूसरे कार्यकाल में इस मोर्चे पर उसकी सम्भावित भूमिका और नीतियों पर बात करना ज़रूरी हो जाता है। 'अच्छे दिनों' का वादा करके 2014 में सत्तासीन हुई इस सरकार ने जिन धन्ना सेठों को अच्छे दिनों की सौगात दी, उसकी भारी क़ीमत पर्यावरण, जलवायु और आम जनता की स्वास्थ्य की बर्बादी ने चुकायी है। 'ग्लोबल फ़ॉरेस्ट वाच' के अनुसार साल 2014 से 2018 के बीच भारत का 1,20,000 हेक्टेयर के जंगलों का भूभाग साफ़ हो गया। यह 2009 से 2013 के बीच हुई जंगलों की सफ़ाई से 40% अधिक है। देश के कुछ सबसे घने वन क्षेत्रों की बात करें तो कोंकण और महाराष्ट्र के पश्चिमी तटीय क्षेत्र में फैले सावंतवाड़ी डोडामार्ग वाइल्डलाइफ़ कॉरिडोर के 1600 एकड़ का वन क्षेत्रफल 2014 के बाद से 4 सालों में ही साफ़ कर दिया गया है। और सबसे चौंकाने वाली बात, कि ये तब हुआ है जब बॉम्बे हाई कोर्ट ने 2013 में भीमागढ़ और राधानगरी वन कॉरिडोर के बीच के इस विशाल हिस्से पर पेड़ों की कटाई पर रोक लगाने का आदेश दे रखा था। शुरू में इस इलाक़े में खनन व अन्य औद्योगिक व व्यावसायिक गतिविधियों को नियन्त्रित रखने का वायदा किया गया, लेकिन बाद में अडानी व वेदान्ता जैसे कॉर्पोरेट दैत्यों को खुल्ली छूट दे दी गयी और देश का यह सबसे घना वन क्षेत्रफल अब तबाही की कगार पर खड़ा है। सरकार की अतिमहत्वाकांक्षी "बुलेट ट्रेन" प्रोजेक्ट के लिए पश्चिमी घाट के घने जंगलों का 438 हेक्टेयर वन क्षेत्रफल साफ़ करने के प्रस्ताव को मंज़ूरी दे दी गयी है, जिसमें से 131 हेक्टेयर क्षेत्रफल 'मैन्ग्रोव' वन का हिस्सा है। 'मैन्ग्रोव' वन आज के दौर में जलवायु और पर्यावरण के दृष्टिकोण से एक बेशक़ीमती सम्पदा है। मैन्ग्रोव वनों में सूर्य की तीव्र किरणों तथा पराबैंगनी-बी किरणों से बचाव की क्षमता होती है। मैन्ग्रोव वन, प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) द्वारा वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड को घटाते हैं। वे समुद्री क्षेत्रों में पाये जाने वाले पादप प्लवकों की अपेक्षा अधिक कार्बन डाइऑक्साइड (प्रति इकाई क्षेत्र पर) को सोखते हैं। ये बड़ी मात्रा में मिट्टी में कार्बन का संचय भी करते हैं और इस प्रकार हरित गृह प्रभाव (greenhouse effect) को कम करते हैं। इन इलाक़ों से मैन्ग्रोव वनों का विध्वंस न सिर्फ़ यहाँ के पर्यावरण और जलवायु के मोर्चे पर विनाशकारी प्रभाव छोड़ेगा, साथ ही इन तटीय इलाक़ों के मछली उद्योग को भी तबाह कर देगा। इसके अलावा देश के सबसे विशाल क्षेत्रफल में फैले तीव्र घनत्व वाले जंगल, छत्तीसगढ़ स्थित हसदेव अरण्ड वन में मोदी सरकार के सबसे करीबी कॉर्पोरेट घराने, 'अडानी ग्रुप' को कोयले की ओपन कास्ट माइनिंग की मंज़ूरी मिल गयी है। हसदेव क्षेत्र लगभग 170,000 हेक्टेयर में फैले मध्य भारत के बहुत घने जंगलों में से एक है जो इस फ़ैसले के बाद तबाही के रास्ते जाने को तैयार है। इलाक़े के गाँव वालों का कहना है कि ओपन कास्ट कोल माइनिंग के नाम पर हसदेव के जंगलों को तबाह करने के लिए ग्रामसभाओं से सहमति भी नहीं ली गयी, और अब ये जंगल, जो पर्यावरण के लिहाज़ से महत्वपूर्ण होने के साथ ही आसपास के गाँवों की जीविका के स्रोत भी हैं, उनके छिन जाने से इलाक़े की विशाल आबादी के लिए अस्तित्व का संकट पैदा हो जायेगा।

7 मार्च 2019 को सरकार ने 1927 के भारतीय वन क़ानून में कुछ ऐसे संशोधन प्रस्तावित किये हैं जो न सिर्फ़ सरकार की ख़तरनाक कॉर्पोरेटपरस्त नीतियों के रास्ते आने वाली तमाम क़ानूनी बाधाओं को दूर कर देंगे, साथ ही इन जंगलों पर पूरी तरह से निर्भर लाखों ग्रामीण आदिवासियों का अस्तित्व ही संकट में डाल देंगे और उनकी जबरन बेदख़ली का रास्ता भी खोल देंगे। प्रस्तावित संशोधनों में से एक प्रमुख संशोधन है वन संरक्षण, वृक्षारोपण की ज़िम्मेदारी से सरकार द्वारा पल्ला झाड़ लेना और इस ज़िम्मेदारी को उन कॉर्पोरेट घरानों के ही सुपुर्द कर देना जो उन इलाक़ों में व्यावसायिक गतिविधियों में लगे हैं अथवा लगने वाले हैं। यह एक तरह से वन संरक्षण के मौजूदा प्रयासों को स्थाई रूप से तिलांजलि देने वाला फ़ैसला सिद्ध होगा। पूरे विश्व भर के अनेक देशों में अपने मुनाफ़े की अन्धी हवस में पर्यावरण की तबाही के लिए बदनाम वेदान्ता, अडानी, पोस्को जैसी कम्पनियों को ही इन जंगलों का कोतवाल बना दिया जायेगा। इसके अलावा इस क़ानून में एक प्रस्तावित संशोधन ग्राम सभा/ग्राम पंचायतों से जंगल के इन इलाक़ों के अधिग्रहण व व्यावसायिक गतिविधियों के लिए दोहन से पहले ली जाने वाली सहमति की अनिवार्यता भी ख़त्म कर देगा। साथ ही इन नीतियों का विरोध करने वाले स्थानीय लोगों के क्रूर दमन को भी क़ानूनी जमा पहनाने का पूरा इन्तज़ाम सरकार द्वारा प्रस्तावित संशोधन में मौजूद है। वन अपराधों को रोकने के नाम पर पुलिस और वन अधिकारियों को असीमित अधिकार दिये जाने का भी प्रस्ताव है जिसके तहत इन इलाक़ों में रहने वाले ग्रामीण आदिवासियों के राजकीय दमन का स्वरूप और भी हिंसक व क्रूर हो जायेगा।

कुल मिलाकर सरकार ने अपने इरादे साफ़ कर दिये हैं। "इज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस" के नाम पर जनता के अधिकारों और मेहनत की लूट-खसोट के साथ ही पर्यावरण के निरंकुश दोहन की नीतियाँ बनाना और उन्हें डण्डे, बन्दूक़, पुलिस, सेना के बल पर लागू करना, यही रास्ता अब उसे आगे के लिए दिख रहा है। सरकार का पहला कार्यकाल जो सरकार के करीबी धन्ना सेठों, पूँजीपतियों और देसी-विदेशी कॉर्पोरेट घरानों के मुनाफ़े की अन्धी हवस के लिए पर्यावरण के निरंकुश दोहन और विध्वंस का कार्यकाल रहा, वह अब अपने दूसरे चरण में और भी नंगी लूट-खसोट और विनाश का साक्षी रहने वाला है। जिस तेज़ी से विश्व पूँजीवाद हमारे पर्यावरण और प्रकृति का सर्वनाश करने की दिशा में बढ़ रहा है, और जिस तरह इस विनाश की रफ़्तार के मामले में भारत दुनिया भर के देशों को पीछे छोड़ते हुए आने वाले दिनों में अस्तित्व के भयावह संकट की तरफ़ तेज़ी से अग्रसर है, ऐसे में हाथ पर हाथ धरे बैठने का अर्थ है, प्रलय और विध्वंस का इन्तज़ार करना। अपने अस्तित्व की इस लड़ाई में सरकार की इन नीतियों का सड़कों पर संगठित प्रतिरोध करने के अलावा जनता के पास अब कोई विकल्प नहीं बचा।

पूँजी के राक्षसी जबड़ों से धरती और पर्यावरण को बचाना होगा

50 डिग्री गरमी के बाद एयरकण्डीशनर काम करना बन्द कर देते हैं। 52 डिग्री तापमान होने के बाद चिड़ियाँ मर जाती हैं। 55 डिग्री तापमान होने पर इंसान का ख़ून उबल जाता है और इंसान मर जाता है। सारी दुनिया में गर्मी बढ़ती जा रही है। जंगलों को काटना इसकी सबसे बड़ी वजहों में से एक है। आप सरकार चुनते हैं ताकि सरकार जंगलों को काटने वाले लोगों पर रोक लगाये। लेकिन अगर सरकार ही जंगल कटवाये तो तापमान को 55 डिग्री होने से कौन रोक सकता है।

हो सकता है तापमान आपकी ज़िन्दगी में इतना ना बढ़े कि आपका ख़ून उबल जाये और आप मर जायें। लेकिन ऐसा आपके बच्चों के साथ ज़रूर होगा लिख लीजिए। मोदी मुसलमानों को डरा कर रखता है तो आपको अच्छा लगता है।

लेकिन जब बढ़ती गर्मी से आपके बच्चों का ख़ून उबलने लगेगा तब मुसलमानों के डरे होने से भी आपके बच्चे को कोई फ़ायदा नहीं होगा।

अगर आप बच्चों के ज़िन्दा रहने लायक़ धरती रखना चाहते हैं, तो मुझे आपसे कुछ कहना है।

मोदी का सबसे पक्का दोस्त है अडाणी। इसने मोदी को चुनाव में पैसा दिया अपना जहाज़ भी दिया। बदले में मोदी ने अडाणी को बहुत सारे फ़ायदों के साथ छत्तीसगढ़ के बस्तर में एक पूरा पहाड़ ही दे दिया। पहाड़ पर लाखों पेड़ हैं। बस्तर को भारत के शरीर का फेफड़ा कह सकते हैं। बस्तर इतनी आक्सीज़न पैदा करता है कि आप उसकी क़ीमत का अन्दाज़ा भी नहीं लगा सकते। आक्सीज़न की क़ीमत का अन्दाज़ा तो अडानी को भी होना चाहिए। अगर कोई अडानी की नाक और मुँह सिर्फ़ एक मिनट के लिए दबाकर रखे, तो अपनी नाक-मुँह छोड़ कर बस एक बार सांस लेने के लिए अडानी कितने पैसे दे सकता है। आप ठीक सोच रहे हैं अडानी एक सांस के लिए अपनी अरबों रुपये की दौलत दे सकता है। अगर एक सांस की क़ीमत इतनी ज़्यादा है, तो आपके आने वाले करोड़ों बच्चों की सांस की क़ीमत कितनी होगी। रहने दीजिए हिसाब मत लगाइए क्योंकि इसका हिसाब लगाने की पढ़ाई आपको नहीं सिखायी गयी है।

अडाणी को मोदी ने बस्तर में जो पहाड़ दिया उस पर लाखों पेड़ लगे हुए हैं। अडानी उस पहाड़ से लोहा खोद कर विदेशों को भेजेगा। आदिवासी जानते हैं कि यह जंगल दुबारा नहीं लगाया जा सकता। तो पैसा कमाएगा अडानी और मरेगा आपका बच्चा। जहाँ लोहा खोदा जाता है वहाँ का पूरा इलाक़ा बर्बाद हो जाता है। कच्चा लोहा लाने-ले जाने और खुदाई विस्फोट से जो धूल उड़ती है उससे लोगों को अस्थमा टीबी और सिलिकोसिस हो जाती है। खदान से उठने वाली लोहे की धूल फ़सलों पर जम जाती है, खेती करना नामुमकिन हो जाता है। लोहे को ट्रकों में लादने से पहले धोया जाता है। उससे नदी बर्बाद हो जाती है।

ऐसा नहीं है कि आपके बच्चों की किसी को परवाह नहीं है। बहुत सारे लोग हैं जो आपके बच्चों की ज़िन्दगी के लिए लड़ रहे हैं। लेकिन मोदी ने उन्हें जेल में डाल दिया है। मोदी कहता है ये लोग मुझे मारना चाहते हैं। सच ही कहता है मोदी। अगर जंगल काटना बन्द हो जायेगा तो मोदी को चुनाव लड़ने के लिए पैसे कौन देगा। और अगर चुनाव के लिए पैसा ना मिले तो नेता तो मर ही जायेगा। सुधा भारद्वाज, सोनी सोरी और अन्य अनेकों सामाजिक कार्यकर्ता जिन्होंने जंगलों की कटाई और आदिवासियों की ज़मीन ना छीनने के खिलाफ़ आवाज़ उठायी, उन्हें जेलों में डाला गया, बहुतों को गोली से उड़ा दिया गया।

अभी हाल ही में मोदी के दोस्त अडानी ने बस्तर में बैलाडीला नाम के पहाड़ में दो हज़ार से ज़्यादा पेड़ काट डाले हैं। इस साल अडानी पच्चीस हज़ार पेड़ काटेगा। अपने खनन के लिए अडानी कई लाख पेड़ काटेगा। वैसे तो सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि सुरक्षित जंगल को किसी भी दूसरे इस्तेमाल के लिए नहीं दिया जा सकता। लेकिन सरकार और अमीर लोग सुप्रीम कोर्ट की बात भी नहीं मानते। बस्तर पाँचवीं अनुसूची क्षेत्र है। इस इलाक़े में बिना ग्राम सभा की इजाज़त के सरकार कोई काम नहीं कर सकती। सरकार ने झूठा ग्राम सभा का कागज़ बना लिया है। गाँव की सरपंच भी पहाड़ के नीचे धरने पर बैठी है। सरपंच यानी प्रधान का कहना है कि कोई ग्राम सभा नहीं हुई है। पिछले कई दिनों से पच्चीस हज़ार से ज़्यादा आदिवासी पहाड़ पर जाने वाली सड़क को रोक कर बैठे हैं। मगर सरकार और पुलिस का एसपी कह रहे हैं कि इन लोगों पर कार्रवाई की जायेगी।

(यह अंक प्रेस में जाने तक छत्तीसगढ़ सरकार ने आन्दोलन के दबाव में खनन की कार्रवाई फ़िलहाल रोक दी है। लेकिन जब तक पूँजीपतियों के इशारों पर चलने वाली सरकारें सत्ता में रहेंगी तब तक मुनाफ़े के भूखे पूँजी के राक्षसों के जबड़ों से जल-जंगल-ज़मीन को कब तक बचाया जा सकता है, कहना मुश्किल है। – सं.)

– सामाजिक कार्यकर्ता **हिमांशु कुमार** की पोस्ट के आधार पर

चुनाव में ईवीएम के इस्तेमाल को लेकर आपको क्यों चिन्तित होना चाहिए?

(पेज 7 से आगे)

भी तर्क दिये हैं, उनसे दो चुनावों के बीच पूरी ईवीएम को ही बदल देने की सम्भावना ख़त्म नहीं हो जाती, जिस समय राजनीतिक दलों के लोग ईवीएम के भण्डारगृहों पर निगरानी नहीं करते रहते हैं। पेपर के लेखक हरिप्रसाद को ईवीएम चुराने के आरोप में गिरफ़्तार किया गया था, यही तथ्य साबित करने के लिए काफ़ी है कि ईवीएम की सुरक्षा के अचूक प्रशासनिक इन्तज़ामों का दावा ग़लत है!

मई 2017 में आम आदमी पार्टी के विधायक सौरभ भारद्वाज ने अपने हिसाब से बनवायी हुई एक ईवीएम के प्रयोग से यह दिखाया कि मशीनों और उम्मीदवारों की सूचियों के बेतरतीबीकरण सम्बन्धी तमाम सुरक्षा उपायों को दरकिनार करके मतदान के समय मनचाहे उम्मीदवार को जिताया जा सकता है। मशीन को इस तरह प्रोग्राम किया गया था कि वह बिल्कुल सामान्य काम करती थी लेकिन जैसे ही कोई वोटर एक ख़ास क्रम में कुछ नम्बरों को दबाता, तो एक विशेष कोड चालू हो जाता जिससे मशीन एक या अधिक उम्मीदवार के कुछ या सभी वोट किसी दूसरे उम्मीदवार के खाते में भेज देती। के.चु.आ. ने इस दावे को महज़ यह कहकर ख़ारिज कर दिया कि यह चुनाव आयोग की ईवीएम नहीं है। के.चु.आ. का यह भी कहना है कि इस तरह से ईवीएम को बदलना मुमकिन नहीं है क्योंकि उसमें लगी माइक्रोचिप को एक ही बार प्रोग्राम किया जा सकता है। लेकिन इससे यह सम्भावना ख़त्म नहीं होती कि पहले बने प्रोग्राम में ही यह ट्रोजन हॉर्स (खुफ़िया कोड) डाल दिया गया हो। यह भी हो सकता है कि बाद में मशीन का मदरबोर्ड और/या माइक्रोचिप ही बदल दिया जाये। एक ख़बर में आरोप लगाया गया था कि ईवीएम के लिए माइक्रोचिप बनाने वाली अमेरिकी कम्पनी का मालिक एक ख़रबपति अनिवासी भारतीय है और ये वही लोग हैं जिन्हें गुजरात राज्य पेट्रोलियम कॉरपोरेशन में हुए अरबों के घोटाले से फ़ायदा पहुँचाया गया था। इसलिए ऐसी सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता। ख़ुद अपनी ही तकनीकी आकलन कमेटी की सिफ़ारिश के बावजूद के.चु.आ. माइक्रोचिप और उसमें दर्ज सॉफ़्टवेयर की जाँच की इज़ाज़त नहीं देता जिससे सन्देहों को और बल मिलता है।

हाल की अनेक घटनाओं ने ईवीएम मशीनों की अभेद्य सुरक्षा के के.चु.आ. के दावों की हवा निकाल दी है। उदाहरण के लिए, आरटीआई से मिली जानकारी के आधार पर 20 लाख ईवीएम लापता हैं। बीसीएल/ईसीआईएल से भेजी गयीं और के.चु.आ. को मिलीं ईवीएम की संख्या में इतना भारी अन्तर है। इससे यह सन्देह उठना लाज़िमी है कि लापता मशीनें किसी राजनीतिक सत्ता के क़ब्ज़े में हैं और उनका इस्तेमाल चुनाव या मतगणना के समय ईवीएम को बदलने के लिए किया जा रहा है। दिलचस्प बात यह है कि जब इस आरटीआई कार्यकर्ता मनोरंजन राय ने के.चु.आ. से अलग-अलग राज्यों को भेजी गयी ईवीएम के आईडी नम्बर और ट्रांसपोर्ट चालान की प्रतियाँ माँगीं, तो उन्हें केवल ईवीएम के सालाना बजट और ख़र्च की जानकारी दे दी गयी। के.चु.आ. ने लापता ईवीएम के बारे में कोई सफ़ाई नहीं दी और बस यह कहकर पल्ला झाड़ लिया कि यह ख़बर इकतरफ़ा है। श्री राय की याचिका सुप्रीम कोर्ट में लम्बित है।

हाल में यह ख़बर भी आयी है कि अब इस्तेमाल हो रही एम3 मशीनों की मेमोरी ऐसी है जिसे दोबारा प्रोग्राम किया जा सकता है। यह के.चु.आ. के अब तक के दावों पर गम्भीर सवाल उठाती है।

ध्यान देने की बात है कि केवल 10 प्रतिशत या उससे भी कम मशीनों में छेड़छाड़ करना मनचाहे नतीजे पाने के लिए पर्याप्त है। हरि प्रसाद आदि ने भी अपने पेपर में यही दावा किया है। अगर चुनाव में 16 लाख मशीनें इस्तेमाल हो रही हैं तो 10 प्रतिशत भी 1.6 लाख मशीनें हो जाती हैं। कुछ लोगों ने सवाल उठाया कि यह सम्भव नहीं है कि किसी का ध्यान खींचे बिना इतनी बड़ी संख्या में मशीनों में गड़बड़ी कर दी जाये। हालाँकि 1.6 लाख की संख्या अपने में बड़ी लगती है लेकिन प्रति लोकसभा क्षेत्र के हिसाब से, यह औसतन केवल 300 मशीनें बनती हैं। एक निर्वाचन क्षेत्र में 300 मशीनों के मदरबोर्ड बदलने में कुशल इंजीनियरों को 50 से 100 घण्टे लगेंगे। लेकिन अगर 'आप' विधायक के केवल 90 सेकण्ड के दावे को मानें तो 7 घण्टे में सारी ईवीएम के मदरबोर्ड बदले जा सकते हैं।

ईवीएम की पहले स्तर की जाँच के दौरान बीसीएल/ईसीआईएल के इंजीनियर मशीनों के सॉफ़्टवेयर की जाँच नहीं करते, एम3 मशीनों में दोबारा प्रोग्राम करने योग्य मेमोरी है, न केवल माइक्रोचिप बल्कि ईवीएम का पूरा मदरबोर्ड बदला जा सकता है, और चुनावों के बीच ख़ासा समय होता है जब उनके भण्डारण पर पार्टियों की निगरानी नहीं होती है। इन सारे तथ्यों को ध्यान में रखें तो ईवीएम के माइक्रोचिप या मदरबोर्ड को बदले जाने की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता। जब भाजपा जैसी पार्टी ऐसा करने की योजना बना रही हो, जिसके पीछे आरएसएस के फ़ासिस्ट कैडरों की ताक़त हो जिन्हें गोपनीय ढंग से काम करने और अफ़वाहें फैलाने में महारत हो, और सरकारी मशीनरी में ऊपर से लेकर नीचे तक उनकी घुसपैठ हो, तो ऐसी छेड़छाड़ की सम्भावना बहुत अधिक हो जाती है।

इस चुनाव में के.चु.आ. के इस दावे की भी हवा निकल गयी कि सभी ईवीएम की आवाजाही की जीपीएस से निगरानी की जाती है। एक आरटीआई प्रश्न के जवाब में के.चु.आ. ने बताया कि जीपीएस डेटा और ईवीएम लेकर जाने वाली गाड़ियों के बारे में उसके पास कोई "ठोस जानकारी" नहीं है। यानी ईवीएम ट्रैकिंग सिस्टम (ईटीएस) के बारे में किया गया दावा बस काग़ज़ पर ही है। पूरे चुनाव के दौरान ईवीएम कभी किसी होटल में, कभी अधिकारी के घर पर, तो कभी सड़क पर मिलने की ख़बरें आती रहीं। कई जगहों पर ईवीएम बहुत देर से कलेक्शन सेण्टरों पर पहुँचीं। उत्तर प्रदेश के चन्दौली में 20 मई को एक नागरिक ने एक वीडियो डाला जिसमें ईवीएम बिना किसी सुरक्षा के मतगणना केन्द्र के परिसर में एक कमरे में रखी हुई थीं जबकि के.चु.आ. के निर्देशों के अनुसार मतदान में प्रयुक्त और रिज़र्व, सभी मशीनें हर समय सशस्त्र पुलिस के पहरे में रहनी चाहिए। उत्तर प्रदेश के ही डुमरियागंज में तहसीलदार राजेन्द्र अग्रवाल को लोगों ने अपनी जीप में ईवीएम लेकर जाते हुए पकड़ा। झाँसी में वीवीपैट लेकर जाती दो प्राइवेट गाड़ियाँ और ईवीएम लेकर जाती सिटी मजिस्ट्रेट की दो गाड़ियाँ पायी गयीं। चुनाव आयोग के दिशा-निर्देशों के उल्लंघन की ऐसी कई घटनाएँ हैं।

इसी के साथ यह गम्भीर ख़बर भी आयी कि 370 चुनाव क्षेत्रों में ईवीएम से मिले वोटों और निर्वाचन अधिकारियों द्वारा रिपोर्ट किये गये वोटों की संख्या में अन्तर है। इनमें उत्तर प्रदेश और बिहार की 120 में से 119 सीटें शामिल हैं। इस सम्बन्ध में भी के.चु.आ. की सफ़ाई बहुत लचर है।

गुजरात के मुख्य चुनाव अधिकारी के हवाले से एक समाचार में कहा गया है कि प्रथम स्तर की जाँच के दौरान ईवीएम की1154 बैलट यूनिटों और 3565 कण्ट्रोल यूनिटों में ख़राबी पायी गयी। इसके अलावा, 2594 वीवीपैट भी गड़बड़ पायी गयीं। 2017 में गुजरात विधानसभा चुनाव के पहले 3550 वीवीपैट ख़राब पाये थे। कुल 62,666 में से 5245 कण्ट्रोल यूनिटें और 75,000 में से 2970 बैलट यूनिटें भी ख़राब पायी गयी थीं और वापस लौटा दी गयी थीं। इतनी भारी संख्या (लगभग 5%) में ईवीएम और वीवीपैट में गड़बड़ी पाया जाना बेहद आश्चर्यजनक है। इससे लगता है कि या तो ईवीएम बनाने वाली कम्पनी बेहद घटिया काम कर रही है या फिर यह ईवीएम में गड़बड़ी की कोशिश है।

ईवीएम के विरुद्ध जनआन्दोलन संगठित करना होगा

कांग्रेस या दूसरी विपक्षी पार्टियाँ ईवीएम के विरुद्ध कोई मज़बूत आन्दोलन नहीं खड़ा कर सकतीं। एक तो संसदीय वामपन्थियों सहित तमाम बुर्जुआ पार्टियाँ सत्ता की मलाई चाटते-चाटते इतनी कमज़ोर और ठस्स हो चुकी हैं और उनका नेतृत्व इस कदर कायर और नैतिक रूप से कमज़ोर हो चुका है कि वे चाहें भी तो अपने कार्यकर्ताओं को लाठी खाने और जेल जाने के लिए सड़कों पर नहीं उतार सकती हैं। दूसरे वे डरती हैं कि इस सवाल पर लोगों को अगर उन्होंने जगा दिया तो उन्हें वे नियंत्रित नहीं कर पायेंगी और अगर यह आन्दोलन आगे बढ़ गया तो कहीं वे सवाल भी न उठने लग जायें जिन पर भाजपा सहित सभी पूँजीवादी पार्टियों की आम सहमति है। इसलिए अब मेहनतकश वर्गों को ही इस सवाल को उठाना होगा और मतदान के उस अधिकार की सुरक्षा की लड़ाई अपने हाथों में लेनी होगी जिसे लम्बे संघर्ष के बाद हासिल किया गया था।

अन्धकार है घना! पर संघर्ष है ठना!!

(पेज 8 से आगे)

शुरू किया कि ये लोग वोट काटने के लिए आये हैं। लेकिन जनता का व्यापक समर्थन मिलता देख वह ख़ुद उन्हीं मुद्दों पर बात करने लगे जिन पर आरडब्ल्यूपीआई चुनाव लड़ रही थी। गाँव-गाँव में ग्राम प्रधानों, पूर्व प्रधानों, दलालों आदि के माध्यम से पूँजीवादी पार्टियों द्वारा पैसे बाँटे गये। लोगों का अनुमान था कि अकेले भाजपा के प्रत्याशी ने इस इलाक़े में लगभग 26 करोड़ रूपये बाँटे हैं। कुल मिलाकर आरडब्ल्यूपीआई समाजवादी कार्यक्रम के प्रचार के जिस मुख्य मक़सद को लेकर चुनावों में उतरी थी, उन सभी मुद्दों पर लोगों का बहुत अच्छा समर्थन मिला। कम वोट मिलने की वज़ह पहली तो यह थी कि कम समय होने की वज़ह से हम बहुत छोटे से इलाक़े तक ही पहुँच सके। दूसरे, लोगों में इसका भी थोड़ा असर था कि चूँकि ये जीत नहीं पायेंगे, इसलिए अपना वोट किसी जीतने वाले प्रत्याशी को दिया जाये। तीसरे, इस इलाक़े में संगठन का काम एकदम शुरुआती दौर में है।

कुल मिलाकर कहें तो सबसे प्रमुख सकारात्मक बात यह है कि इस अभियान के ज़रिये चुनाव के दौरान राजनीतिक तौर पर सक्रिय आबादी के बीच हमने समाजवादी कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार किया। यह सिर्फ मज़दूर वर्ग तक केन्द्रित नहीं रहा बल्कि आम जनता के हर तबके तक हमारी बात पहुँची। इस प्रचार के ज़रिये पूँजीपति वर्ग की पार्टियों का बेहतरीन भण्डाफोड़ भी किया गया। कुछ क्षेत्रों में हमने मज़दूरों के बीच वालण्टियर कोर भी खड़ी की है। वहीं नकारात्मक के तौर पर जो बात उभर कर आयी उसके पीछे एक छोटी पार्टी होने के वस्तुगत कारण अधिक थे जिस कारण हम जनता के व्यापक हिस्से में प्रचार नहीं कर पाये। दूसरा, दिल्ली में रह रही मज़दूर आबादी के एक बड़े हिस्से का वोटर कार्ड यहाँ नहीं है जिस कारण वे वोट नहीं डाल सकते हैं। आगे पार्टी की तरफ़ से इस बाबत मतदाता कार्ड कैम्प भी लगवाये जायेंगे। उन इलाक़ों में प्रचार को अधिक सकारात्मक रूख के साथ लोगों ने सुना और वोट की संख्या भी ठीक रही जहाँ जनता के बीच हमारे संस्थाबद्ध सुधार कार्य चल रहे हैं। पार्टी के नेतृत्व में इस ओर भी विशेष ज़ोर देना होगा, यह कार्य फासीवाद के विरुद्ध हमारी रणनीति का भी अहम हिस्सा है।

आगे का रास्ता क्या होगा

जिन मुद्दों को लेकर हमने संसदीय चुनाव में हस्तक्षेप किया था उन मुद्दों को लेकर ही हमें फिर से जनता के बीच निरन्तर मौजूद रहना होगा। रोज़गार की गारण्टी, ठेका प्रथा का ख़ात्मा, न्यूनतम वेतन 20000 रुपये, नि:शुल्क और समान शिक्षा, नि:शुल्क स्वास्थ्य सेवा, पक्की नालियाँ, साफ़ पीने का पानी व अन्य तात्कालिक माँगों को मौजूदा सरकार के समक्ष रखने के लिए पार्टी हर इलाक़े में मोहल्ला सभाओं का आयोजन करेगी और इन सवालों को लेकर आन्दोलन छेड़ेगी। RWPI सभी मज़दूर साथियों का आह्वान करती है कि वे पार्टी से जुड़ें और अन्य इंसाफ़पसन्द लोगों को भी जोड़ें। पार्टी समाजवादी कार्यक्रम की दीर्घकालिक माँगों पर भी जनता में लगातार प्रचारित-प्रसारित करती रहेगी।

RWPI एक नवगठित पार्टी है जो पहली बार लोकसभा चुनावों में हिस्सेदारी कर रही है। अभी यह अपनी पहचान को स्थापित करने की ही मंज़िल में है। अभी व्यापक मेहनतकश जनसमुदाय तक इस नाम को पहुँचने और स्थापित होने में समय लगेगा, जो कि लाज़िमी है, क्योंकि यह किसी पूँजीवादी घराने, पूँजीवादी चुनावी ट्रस्टों, एनजीओ, फ़ण्डिंग एजेंसियों आदि के वित्तपोषण पर नहीं टिकी है। पूरा चुनाव अभियान RWPI ने जनता के बीच से और प्रगतिशील व्यक्तियों के बीच से जुटाये सहयोग से चलाया और समझा जा सकता है कि लोकसभा के विशाल निर्वाचक मण्डल को पूरी तरह ऐसे प्रचार से समेट पाना भी मुमकिन नहीं होता। कारपोरेट मीडिया का समर्थन आपके पास नहीं होता जिससे कि उस आबादी तक भी आपकी बात पहुँच सके, जिस तक आप स्वयं भौतिक रूप में नहीं पहुँच सकते। इन सभी सीमाओं के बावजूद RWPI को अपने प्रचार अभियान और कई लोकसभा सीटों पर वोटों के रूप में भी जनता का अच्छा समर्थन प्राप्त हुआ है। आने वाले समय में इस प्रदर्शन को पार्टी और बेहतर बनायेगी और पूँजीवादी संसद में मज़दूर वर्ग के प्रतिनिधि और स्वर के रूप में पहुँचेगी। आने वाले समय में RWPI आम मेहनतकश जनता के सभी मुद्दों पर उन्हें गोलबन्द और संगठित करना जारी रखेगी और उसके राजनीतिक विकल्प के तौर पर खड़ी होगी।

पश्चिम बंगाल में भाजपा की सफलता और संसदीय वाम राजनीति के कुकर्म

– अभिषेक

पश्चिम बंगाल में लोकसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को मिली भारी सफलता बहुत से लोगों को हैरान करने वाली लग सकती है लेकिन पिछले कुछ वर्षों के दौरान बंगाल की राजनीतिक घटनाओं पर अगर नज़र डालें तो इसे समझा जा सकता है।

2014 के बाद से ही संघ और भाजपा ने त्रिपुरा, बंगाल और केरल में वाम मोर्चे को उखाड़ फेंकने के प्रोजेक्ट पर ख़ासा ज़ोर लगाया हुआ था। संघ के स्वयंसेवकों के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर भाजपा कार्यकर्ताओं को वहाँ लगाया गया था और बेहिसाब पैसा झोंका गया था। त्रिपुरा में पिछले विधानसभा चुनाव में उसे सफलता मिल गयी जिसके कारणों के बारे में हम 'मज़दूर बिगुल' में विस्तार से लिख चुके हैं। बंगाल में वाम मोर्चा, और ख़ासकर माकपा का संगठन तो 2011 के बाद से ही बुरी तरह बिखराव और पस्ती का शिकार था, और कोई वैचारिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक प्रतिरोध करने की स्थिति में था ही नहीं, न ही इसके कायर व अकर्मण्य नेतृत्व के पास ऐसी कोई योजना या समझ थी। वे तो तृणमूल की गुण्डई से अपने संगठन का बचाव करने की हालत में भी नहीं रह गये थे। ममता बनर्जी की राजनीति ने भाजपा को अपना प्रभाव फैलाने का और भी मौक़ा दे दिया।

इस चुनाव में भाजपा की भारी सफलता का एक बहुत बड़ा कारण यह था कि वाम पार्टियों के समर्थकों के वोट बड़ी संख्या में भाजपा के खाते में चले गये। भाजपा के वोट 2014 में 16.8 से बढ़कर इस बार 40.25 पर पहुँच गये और सीटें 2 से बढ़कर 18 पर पहुँच गयीं जबकि वाम मोर्चे के वोट 22 प्रतिशत से घटकर 7.8 ही रह गये और उसका खाता भी नहीं खुल सका। बंगाल के उत्तरी इलाक़ों में वाम के लोगों के बीच एक नारा चल रहा था "आगे राम तारपोर बाम", यानी पहले राम को आने दो, उसके बाद वाम आयेगा। 'काँटे से काँटा निकालना" का मुहावरा इस्तेमाल किया जा रहा था। कमोबेश यही सोच सभी जगह वाम के लोगों में छायी हुई थी। चुनाव के बाद माकपा के महासचिव सीताराम येचुरी ने स्वीकार भी कर लिया कि उनकी पार्टी के बहुत से समर्थकों ने इस बार भाजपा को वोट दिया। चुनाव में तृणमूल के बैकफ़ुट पर जाने के बाद माकपा के नेताओं ने बेशर्मी के साथ यह भी कहना शुरू कर दिया कि अब तृणमूल की हार के बाद हम अपने दफ़्तर खोल सकते हैं।

उधर भाजपा ने चुनावी सफलता के बाद तृणमूल सरकार और पार्टी पर हमले और भी तेज़ कर दिये हैं। तृणमूल के बहुत से नेता भाजपा में शामिल हो रहे हैं। वैसे तो माकपा का भी एक विधायक भाजपा में छलाँग लगा चुका है। वाम पार्टियों को ठिकाने लगाने के बाद अब भाजपा ममता बनर्जी की पार्टी और सरकार को कमज़ोर करने में जुट गयी है ताकि अगले विधानसभा चुनाव में बंगाल पर क़ब्ज़ा कर सके।

ममता सरकार की बुरी हालत के पीछे उद्योग-धन्धों को चौपट कर देने, मुस्लिम वोट बैंक की राजनीति, गुण्डागर्दी, बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार और तानाशाही के कारण लोगों में फैला असन्तोष है जिसका भाजपा ने अपने ज़हरीले प्रचार से ख़ूब फ़ायदा उठाया। हिन्द मोटर्स जैसा ऑटोमोबाइल का बड़ा कारख़ाना बन्द हो गया। बची-खुची कई जूट मिलों में से भी कई बन्द हो गयीं। इनके बदले नये उद्योग नहीं लगे। विकास के नाम पर कोलकाता सहित कई जगहों पर बस्तियों को उजाड़ा गया। बेरोज़गारी की हालत पहले से भी बदतर हो गयी। पंचायती चुनावों में तृणमूल के लोगों की ज़बर्दस्त गुण्डई ने लोगों की नाराज़गी को और बढ़ाया। इमामों को भत्ता देने जैसे मुस्लिम वोट बटोरने के लिए उठाये गये क़दमों को भाजपा ने जमकर भुनाया।

माकपा और वाम मोर्चा इस समय बिल्कुल लाचार और पस्त दिख रहे हैं। अपने शासन काल में बूथ-कैप्चरिंग, गुण्डागर्दी, मज़दूर आन्दोलनों के दमन, ट्रेड यूनियन नौकरशाही, सिंगुर-नन्दीग्राम घटनाओं के कारण जनता के बीच बुरी तरह बदनाम होकर सत्ता से हटने के बाद उसके द्वारा वापसी का आधार तैयार करने की कोशिश भी नहीं दिख रही है। माकपा के एक कैडर ने मुझे यह बताया कि 2040 के पहले इसके वापस सत्ता में लौट आने के कोई आसार नहीं दिख रहे इसीलिए अभी ज़्यादा प्रयास करने से कोई फ़ायदा नहीं होगा। अब भी वे सारा दोष मीडिया पर मढ़ कर अपना पल्ला झाड़ लेने की प्रवृत्ति पाले हुए हैं। बहुत से कैडर लोकसभा चुनाव के परिणामों के बाद बुर्जुआ लिबरलों की तरह कह रहे हैं कि देश की जनता जैसी होती है, उसे वैसी ही सरकार नसीब होती है। कई पुराने कैडर दूसरों को नसीहतें देते फिरते हैं कि सारी ज़िम्मेदारी पार्टी के नेताओं पर डालने के बजाय ख़ुद को नेता बनाइए।

दूसरी ओर, भाजपा और संघ ने 2014 के बाद से लगातार प्रचार और संगठन फैलाने पर ज़ोर दिया। 2011 तक पश्चिम बंगाल में आरएसएस की 580 शाखाएँ लगती थीं, जिनकी संख्या लगभग तीन गुना बढ़कर 2016 में 1492 तक पहुँच चुकी थी। इनमें से बहुत सी शाखाएँ आदिवासी इलाक़ों में लग रही थीं। भाजपा के आईटी सेल ने प्रचार में व्हॉट्सऐप के इस्तेमाल के बारे में करीब डेढ़ साल पहले बंगाल में वर्कशॉप आयोजित करने शुरू कर दिये थे। बंगाल की 9 करोड़ आबादी में करीब 3 करोड़ लोगों के पास स्मार्टफ़ोन हैं जिन तक पहुँचने के लिए आईटी सेल की सीधी देखरेख में 55,000 व्हॉट्सऐप ग्रुप बनाये गये जो लगातार तमाम तरह की प्रचारात्मक सामग्री प्रसारित करते रहते थे। इसके अलावा फ़ेसबुक और ट्विटर का भी बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया गया। बताया जाता है कि बंगाल में फ़ेसबुक पर भाजपा ने 50 करोड़ रुपये ख़र्च किये और इससे कई गुना ज़्यादा व्हॉट्सऐप पर। राष्ट्रीय स्तर पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से भाजपा के पक्ष में अन्धाधुन्ध प्रचार का असर तो था ही।

बंगाल में चुनाव के दौरान हिंसा कोई नयी बात नहीं है लेकिन इस बार भाजपा और तृणमूल के बीच गुण्डागर्दी की होड़ में आम जनता बुरी तरह पीसी गयी। कुछ साल पहले तक चुनावी हिंसा की एक बड़ी भागीदार रहने वाली माकपा इस बार मूक दर्शक की भूमिका में ही रही। सबसे ज़्यादा संवेदनशील रहा उत्तर चौबीस परगना का भाटपाड़ा इलाक़ा जो बैरकपुर लोकसभा क्षेत्र में आता है। भाटपाड़ा के पुराने एमएलए, अर्जुन सिंह के टीएमसी से निकल कर भाजपा में शामिल हो जाने और उसके टिकट पर लोकसभा चुनाव लड़ने के कारण वहाँ 19 मई को विधानसभा उपचुनाव भी था, जिसमें भाजपा के तरफ़ से अर्जुन सिंह का बेटा पवन सिंह और टीएमसी के तरफ़ से मदन मित्रा मैदान में थे। बैरकपुर में लोकसभा चुनाव 6 मई को हुआ जिसमें बीजेपी से अर्जुन सिंह और टीएमसी से दिनेश त्रिवेदी आमने-सामने थे। मगर इस दौरान यह इलाक़ा दहशत के चंगुल में फँसा रहा। कई दिनों तक गोली-बम चलते रहे। इसी क्षेत्र में कांकिनारा रेलवे स्टेशन पर भी

(पेज 2 पर जारी)

मोदी सरकार की वापसी : मेहनतकश जनता पर नये कहर की शुरुआत

(पेज 9 से आगे)

के हाथों में खेलते रहे। इसकी परिणति 2014 में मोदी की जीत से हुई जिसके साथ ही पूर्ण बहुमत वाली पहली फासिस्ट सरकार सत्ता में आयी।

यह प्रक्रिया निम्न पूँजीपति वर्ग और लम्पट सर्वहारा वर्ग का एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन खड़ा करने की प्रक्रिया थी जो देशी-विदेशी बड़े पूँजीपति वर्ग के हितों को पूरा करता था। 1970 के दशक में शुरू हुई यह प्रक्रिया मोदी की दोबारा जीत के साथ अपने चरम मुकाम पर पहुँची है।

बीसवीं सदी में जिस प्रकार फ़ासीवाद का अचानक उभार हुआ और फिर वह नष्ट हो गया, आज का फ़ासीवाद उससे अलग है। आज फ़ासीवाद के लिए अचानक तबाह हुए बिना सत्ता में आना और फिर सत्ता से बाहर हो जाना सम्भव है। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद को आज फ़ासीवाद और धुर-दक्षिणपंथ के दूसरे रूपों की पहले से कहीं ज़्यादा ज़रूरत है। फ़ासीवाद जब सत्ता में न रहे तब भी मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के विरुद्ध बुर्जुआ वर्ग की "अनौपचारिक राज्य सत्ता" का काम करता है। वह बुर्जुआ वर्ग के हाथों में ज़ंजीर से बँधे शिकारी कुत्ते की तरह जिसकी ज़ंजीर बुर्जुआ वर्ग कभी कसकर रखता है तो कभी जनता को डराने-धमकाने के लिए खुली छोड़ देता है।

मोदी की जीत से यह भी साफ़ हुआ है कि तमाम किस्म के उदार-वामपंथी और वाम-उदारपंथी किसी भी सूरत में फ़ासीवादी उभार का मुकाबला नहीं कर सकते हैं। जिग्नेश मेवाणी से लेकर कन्हैया कुमार तक, तमाम इस प्रकार के अवसरवादी नेतागण यह सोचते रहे कि किसी प्रकार का जोड़तोड़ का समीकरण बनाकर भाजपा को हराया जा सकता है। इनमें से अधिकांश दलित, मुस्लिम, आदिवासी, अतिपिछड़े का योगात्मक समीकरण बनाने के चक्कर में थे। ऐसे तथाकथित वामपंथी या प्रगतिशील नेतागण अम्बेडकरवादी विचारधारा और राजनीति के समक्ष समर्पण करके और पहचान की राजनीति का तुष्टिकरण करके जीतने का सपना पाले हुए थे। उनको भी यह समझना चाहिए कि इस रास्ते से फ़ासीवाद को कभी परास्त नहीं किया जा सकता है। फ़ासीवाद का जवाब केवल और केवल क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट रास्ते से ही दिया जा सकता है। आज की ज़रूरत है एक देशव्यापी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का निर्माण जो कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा पर दृढ़ता से अमल करती हो, काडर-आधारित हो और बोल्शेविक अनुशासन पर टिकी हो। एक ऐसी पार्टी के नेतृत्व में एक जुझारू क्रान्तिकारी जनान्दोलन का निर्माण ही फ़ासीवाद को निर्णायक शिकस्त दे सकता है। यह एक लम्बा कार्यभार है जिसमें बहुत श्रम, बहुत रक्त, बहुत पसीना, बहुत कुर्बानी देनी होगी। लेकिन जो भी इस लम्बे रास्ते की बजाय कोई छोटा शॉर्टकट तलाश करने की फ़िराक़ में होगा, उसे नाउम्मीदी और नाकामयाबी ही मिलेगी।

भारत की नकली कम्युनिस्ट पार्टियों यानी संशोधनवादी पार्टियों का जो हश्र हुआ है, वह सम्भावित था। क्रान्ति का रास्ता छोड़ सुधारवाद और अर्थवाद के रास्ते पर जा चुकी माकपा, भाकपा और भाकपा (माले) लिबरेशन जैसी पार्टियों की स्थिति पहले हमेशा से ज्यादा ख़राब है। पश्चिम बंगाल में देखा जा सकता है कि वाम मोर्चे का समूचा सामाजिक आधार भाजपा के पक्ष में चला गया। भाजपा को तृणमूल कांग्रेस के आधार में सेंध लगाने का अवसर उतना नहीं मिला जितना कि वाम मोर्चा के आधार को छीनने का मिला। वास्तव में, पश्चिम बंगाल में भाजपा के अभूतपूर्व प्रदर्शन के पीछे यही प्रमुख कारण था। कई जगह तो वाम मोर्चा के कार्यकर्ता और नेतागण बाकायदा तृणमूल कांग्रेस को हराने के लिए भाजपा को जिताने में लगे हुए थे! ऐसा बर्ताव किसी कम्युनिस्ट पार्टी का नहीं बल्कि संशोधनवादी पार्टी का ही होता है; ऐसा सामाजिक आधार भी किसी कम्युनिस्ट पार्टी का नहीं बल्कि संशोधनवादी पार्टी का ही होता है। कारण यह कि ये संशोधनवादी पार्टियाँ अवसरवादी तरीके से अर्थवाद और सुधारवाद पर ही अमल करती हैं, न कि क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार और कार्रवाई पर। नतीजतन, इनका सामाजिक आधार कोई जैविक रूप से राजनीतिक सामाजिक आधार नहीं होता और वह किसी मौके पर खिसक कर सीधे दक्षिणपंथ और फ़ासीवाद के पक्ष में भी जा सकता है। पश्चिम बंगाल में यही हुआ है। केरल में भी कांग्रेस-नीत यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रण्ट द्वारा माकपा-नीत लेफ्ट डेमोक्रेटिक फ्रण्ट के सफ़ाये का एक दूसरे रूप में यही कारण है। एक रूप में संशोधनवाद का यह ध्वंस क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट राजनीति के लिए बेहतर है। जनता के बीच राजनीतिक विभ्रम की स्थिति को यह समाप्त करेगा और क्रान्तिकारी शक्तियों के लिए राजनीतिक प्रचार और संगठन को आसान बनायेगा। आज माकपा और भाकपा जैसी तमाम संशोधनवादी पार्टियों में और विशेष तौर पर उनके छात्र मोर्चे में काम करने वाले ईमानदार और प्रतिबद्ध कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं को संशोधनवाद और उसकी मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी को समझना होगा और क्रान्तिकारी कम्युनिज़्म को अपनाना होगा।

हम एक बार फिर इस बात को दुहराना चाहते हैं कि फ़ासीवाद-विरोधी मोर्चे का सवाल चुनावी मोर्चे का सवाल नहीं है! फ़ासीवाद को चुनाव में हराकर पीछे धकेलना नामुमकिन है। इसके विरुद्ध व्यापक मेहनतकश जनसमुदाय का जुझारू सामाजिक आन्दोलन सड़कों पर खड़ा करना होगा। इसके लिए इस्पाती कैडर ढाँचे वाली क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करनी होगी और मज़दूरों और सभी मेहनतक़शों के रैडिकल संगठनों, आन्दोलनों और मंचों का व्यापक संयुक्त मोर्चा बनाना होगा। आज की दुनिया में, पूँजीवाद के विरुद्ध क्रान्तिकारी संघर्ष को नए सिरे से संगठित करते हुए, उसके एक अंग के तौर पर ही फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ लड़ा जा सकता है। दूसरा कोई भी मुग़ालता पालना या किसी शॉर्टकट की तलाश करना न सिर्फ़ भ्रामक होगा, बल्कि आत्मघाती भी होगा !

पुतीलोव कारख़ाने के मज़दूरों पर गोलीबारी और उसके विरुद्ध संघर्ष

*प्रसिद्ध पुस्तक 'ज़ार की दूमा में बोल्शेविकों का काम' के कुछ हिस्सों की श्रृंखला में **छठी कड़ी** प्रस्तुत है। दूमा रूस की संसद को कहते थे। एक साधारण मज़दूर से दूमा में बोल्शेविक पार्टी के सदस्य बने **ए. बादायेव** द्वारा क़रीब 100 साल पहले लिखी इस किताब से आज भी बहुत–सी चीज़ें सीखी जा सकती हैं। बोल्शेविकों ने अपनी बात लोगों तक पहुँचाने और पूँजीवादी लोकतन्त्र की असलियत का भण्डाफोड़ करने के लिए संसद के मंच का किस तरह से इस्तेमाल किया इसे लेखक ने अपने अनुभवों के ज़रिए बख़ूबी दिखाया है। यहाँ हम जो अंश प्रस्तुत कर रहे हैं उनमें उस वक़्त रूस में जारी मज़दूर संघर्षों का दिलचस्प वर्णन होने के साथ ही श्रम विभाग तथा पूँजीवादी संसद की मालिक–परस्ती का पर्दाफ़ाश किया गया है जिससे यह साफ़ हो जाता है कि मज़दूरों को अपने हक़ पाने के लिए किसी क़ानूनी भ्रम में नहीं रहना चाहिए बल्कि अपनी एकजुटता और संघर्ष पर ही भरोसा करना चाहिए। इसे पढ़ते हुए पाठकों को लगेगा कि मानो इसमें जिन स्थितियों का वर्णन किया गया है वे हज़ारों मील दूर रूस में नहीं बल्कि हमारे आसपास की ही हैं। 'मज़दूर बिगुल' के लिए इस श्रृंखला को **सत्यम** ने तैयार किया है।*

(छठी किश्त)

जुलाई की शुरुआत से, सेण्ट पीटर्सबर्ग की फ़ैक्टरियों में हड़ताल की गति काफ़ी तेज़ी से बढ़ी। 1 जुलाई को लैगेसिप्पेन, लेसनर, एरिक्सन, सीमेंस-शुकर्ट, ऐवाज़ और दूसरी फ़ैक्टरियों के मज़दूरों ने काम करना छोड़ दिया। फ़ैक्टरियों को छोड़ने से पहले, मीटिंग की गयीं और बाकू के मज़दूरों पर अत्याचार के ख़िलाफ़ प्रतिवाद करने के फ़ैसले लिये गये। "बाकू के कॉमरेडों," सेण्ट पीटर्सबर्ग के मज़दूरों ने ऐलान किया, "हम तुम्हारे साथ हैं, और तुम्हारी जीत हमारी जीत होगी।" कई दूसरी संस्थाओं में मज़दूरों ने हड़ताल की घोषणा नहीं की, मगर एक घण्टा पहले काम छोड़ दिया और मीटिंगें तथा बाकू के मज़दूरों के लिए चन्दे की व्यवस्था की।

पुतिलोव के मज़दूरों द्वारा फ़ैक्टरी के अहाते में आयोजित की गयी मीटिंग में बारह हज़ार लोग उपस्थित थे। लेकिन जैसे ही पहले वक्ता ने दो शब्द कहे, चिल्लाने की आवाज़ आयी "पुलिस" और मीटिंग कोई फ़ैसला लेने के पहले ही बिखर गयी। दो दिनों के बाद, पुतिलोव के मज़दूर बाकू की घटनाओं के सम्बन्ध में एक मीटिंग के लिए फिर से जमा हुए और इस मीटिंग के कारण ऐसी घटनाएँ सामने आयीं, जो सेण्ट पीटर्सबर्ग के जुलाई आन्दोलन में एक नया मोड़ साबित हुईं।

पुतिलोव के मज़दूरों ने कार्य-दिवस समाप्त होने के दो घण्टे पहले काम छोड़ दिया और लगभग 12,000 मज़दूर मीटिंग में शरीक हुए। दो वक्ताओं ने बाकू के मज़दूरों की परिस्थितियों के बारे में कहा और मज़दूरों को हड़तालों की मदद में सहयोग करने तथा प्रतिवाद में एकदिवसीय हड़ताल की घोषणा करने के लिए पुकार लगायी।

पुतिलोव कारख़ाने के मज़दूरों पर गोलीबारी

मीटिंग समाप्त होने पर मज़दूर गेटों की ओर बढ़े और उन्हें खोल दिये जाने की माँग की। मगर जब वे खोले गये तो यह मज़दूरों को बाहर जाने देने के लिए नहीं बल्कि घुड़सवार और पैदल पुलिस को अन्दर आने देने के लिए किया गया। तब गेटों को फिर से बन्द कर दिया गया और पुलिस, जो फ़ैक्टरी के पास छिपे हुए थे, को भीड़ को तितर-बितर करने के लिए बुलाया गया, हालाँकि गेट बन्द होने पर ऐसा हो ही नहीं सकता था। मज़दूरों ने विरोध किया और जवाब में पुलिस ने गोलियों की बौछार कर डाली। "बैरिकेड की ओर" की चीख़ के साथ, भीड़ अहाते की एक छोर की ओर दौड़ पड़ी और वहाँ से पुलिस पर पत्थर चलाये। पुलिस ने दूसरी राउण्ड फ़ायरिंग की और तब घायलों की चीख़ों के बीच उसने एक-एक करके लोगों को गिरफ़्तार करना शुरू किया।

मज़दूरों के कथन के अनुसार, दो लोग मारे गये, लगभग पचास घायल हुए और एक सौ से अधिक लोगों को पुलिस स्टेशन ले जाया गया। जैसे ही मुझे गोली चलने की सूचना मिली, मैं कारख़ाने पर चला गया। मज़दूरों की एक भीड़ ने मुझे गोलियाँ चलने, तलवारों व चाबुक के इस्तेमाल और गिरफ़्तारियों के बारे में बताया; मगर जनहानि की असल संख्या कोई भी नहीं जानता था। जैसा कि इस तरह के हालात में सामान्य है, भीड़ द्वारा पूरी तरह भिन्न अफ़वाहें फैलायी गयीं, लेकिन पुलिस की कार्रवाई को लेकर लोगों में आक्रोश की बात की जाये तो सभी एकमत थे।

कारख़ाने पर

मैंने निश्चित जानकारी के लिए कार्य प्रबन्धन से आवेदन किया, लेकिन जिनसे भी बातें कीं, वे ख़ुद के वचनबद्ध होने से भयभीत थे और पूरे वार्तालाप से दूर रहना चाहते थे। अस्पताल में डरे हुए मेडिकल असिस्टेण्ट ने कह दिया कि उसने कुछ नहीं देखा और वहाँ किसी भी मृत या घायल को नहीं ले जाया गया था। कई मज़दूरों से सवालों को दोहराने के बाद मैं अन्त में जाकर तथ्यों तक पहुँचने में सफल हुआ।

कार्यस्थल से मैं गिरफ़्तार किये गये लोगों की नियति की जाँच करने पुलिस स्टेशन गया। एक दर्जन पूरी तरह हथियारों से लैस पुलिस अफ़सरों ने प्रिस्ताव* के कमरे में भीड़ लगा दी और आश्चर्य के साथ उस अनुरोध को सुन रहे थे, जिसके साथ मैंने कई सारे सवालों के तुरन्त जवाब दिये जाने की माँग की। मैंने पूछा कि निहत्थे मज़दूरों पर गोली चलाने का आदेश किसने दिया, कितने लोग मारे गये और कितने लोगों को गिरफ़्तार किया गया, और किस आरोप पर।

प्रिस्ताव ने कहा कि वह किसी अंजान व्यक्ति को स्पष्टीकरण देने के लिए बाध्य नहीं था और यह कि पुलिस की कार्रवाई में हस्तक्षेप करने का अधिकार किसी को भी नहीं था। जब मैंने उसे अपना डिप्टी का कार्ड दिखाया तो वह कुछ हद तक पराजित हो गया, और उसने शहर के गवर्नर को फ़ोन लगाया, जिसने कड़े आदेश दिये कि मुझे कोई सूचना ना दी जाये।

तब पुलिस अधिकारियों ने मुझे धक्का देकर स्टेशन से बाहर निकाल दिया और गिरफ़्तार किये गये मज़दूरों से बातचीत करने की अनुमति देने से मना कर दिया। यह बिल्कुल साफ़ था कि मज़दूरों को बुरी तरह पीटा जा रहा था; कई मज़दूर फ़र्श पर पड़े हुए थे, इतने कमज़ोर थे कि ना ही खड़े हो पा रहे थे और ना ही बैठ पा रहे थे।

घटना की छाप, घायलों का कष्ट, पुलिस का रोबदार रवैया और मज़दूरों के बीच आतंक और आक्रोश को अपने मन में भरकर रात के मेरे व्यावहारिक कार्य के लिए मैं प्राव्दा के दफ़्तर गया। मैंने जो कुछ भी देखा था, उसे वहाँ पर दर्ज कर दिया और अख़बार के लिए एक संक्षिप्त रिपोर्ट निकाली। उसी समय हमने लिक्विडेशनिस्ट अख़बार देन (दी डे), जो उसी प्रेस का इस्तेमाल करते थे, के सम्पादकों को सूचित किया।

अगले दिन प्राव्दा घटनाओं के एक सम्पूर्ण विवरण और उनके महत्व को विस्तार से बताते हुए एक छोटे नोट के साथ प्रकाशित हुआ। सामग्री को वह जगह दी गयी जो आमतौर पर प्रमुख लेखों को दी जाती थी।

गृह मन्त्री जुंकोवस्की से मुलाक़ात

रात के समय मैंने आन्तरिक मामलों के मन्त्रालय को टेलीफ़ोन किया और पुतिलोव की घटना पर सवाल का सामना करने को कहा। मालकाकोव नगर के बाहर थे और उनके असिस्टेण्ट, जुंकोवस्की, ने मुझे एक मैसेज भेजा, यह कहते हुए कि वे मुझसे अगली सुबह 8 बजे उनके घर पर मिलेंगे।

नियुक्त घण्टों के कुछ मिनट बाद, मैं सेर्गेएव्सकया स्ट्रीट में उनके घर पहुँचा। "मुझे देर हो गयी," मैंने शुरू किया, "क्योंकि सारी रात मुझे ट्रूडोवाया प्राव्दा पर आपके छापा मारने वालों का सामना करना पड़ा।" इस बहाने से जनरल अचानक असुविधा महसूस करने लगे।

"अवश्य ही आपके पास समय नहीं होगा, आप हमेशा फ़ैक्टरी में मज़दूरों को हड़ताल करने के लिए भड़काते रहते हैं। मैं हैरान हूँ कि आपको पुतिलोव कार्यस्थल में प्रवेश करने की अनुमति दे दी गयी। आप राज्य दूमा के एक डिप्टी हैं, आपका काम क़ानून बनाना है – इसीलिए आपको निर्वाचित किया गया है – लेकिन इसके बजाय आप अपना समय वर्कशॉपों में, साजिशें करने में, पर्चे निकालने में और एक ऐसा अख़बार प्रकाशित करने में बिताते हैं, जो उसके पाठकों को आपराधिक कार्य करने के लिए उकसाता है।" उन्होंने ट्रूडोवाया प्राव्दा के नवीनतम अंक की ओर इशारा किया, जो टेबल पर पड़ा हुआ था और आगे बढ़ गये : "मैंने आप पर और इस अख़बार पर मुक़दमा दायर करने के लिए एक विशेष आयोग को अनुमति दे दी है।"

"यह पहली बार नहीं है कि आपके किसी ना किसी क़ानून के अन्तर्गत मुझ पर मुक़दमा चलाया जा रहा है," मैंने जवाब दिया, "और मुझे पता है कि आप ऐसा कर सकते हैं, मगर अभी मैं यहाँ किसी दूसरे उद्देश्य से आया हूँ। मुझे बताइए कि पुलिस ने किस अधिकार से पुतिलोव मज़दूरों पर गोलियाँ बरसायीं; मैं आपके जवाब को सेण्ट पीटर्सबर्ग की दूसरी फ़ैक्टरियों और कार्यस्थलों के मज़दूरों तक पहुँचाऊँगा।"

"वहाँ एक भी गोली नहीं चलायी गयी," उन्होंने तेज़ी से कहा, "पुलिस ने ख़ाली कारतूस के दो राउण्ड चलाये।"

हम दोनों उठे और टेबल के दोनों तरफ़ से एक-दूसरे की ओर देखते हुए खड़े हो गये। "हम मज़दूरों को पुलिस पर पत्थर नहीं चलाने देंगे।" वे आगे बढ़े, "पुलिस के पास राइफ़ल और तलवार हैं और आने वाले दिनों में इस तरह की परिस्थितियों में वे ज़रूर गोली चलायेंगे। इसीलिए तो उन्हें हथियारों से लैस किया गया है।"

"मुझे हमारे मन्त्रियों से किसी और जवाब की उम्मीद नहीं थी," मैंने जवाब दिया, "मैं मज़दूरों को सूचित करूँगा। आप मुझे फ़ैक्टरियों में जाने से नहीं रोक सकते। मज़दूरों द्वारा निर्वाचित किया गया एक डिप्टी कभी भी अपने आप को केवल दूमा के भाषणों तक ही सीमित नहीं करेगा जबकि मज़दूरों को आपके पुलिस स्टेशनों में पीटा जा रहा है।"

मैंने जल्द ही बातचीत ख़त्म कर दी ज़ार के फ़ायरिंग-स्क्वाड के प्रमुख के पास से चला गया।

जुंकोवस्की के साथ मेरे इण्टरव्यू का एक विवरण प्राव्दा में प्रकाशित हुआ; वह अंक ज़ब्त कर लिया गया। मगर इसके अगले अंक में, प्राव्दा ने इसे फिर से छापा; हम लोग दृढ़संकल्पी थे कि मज़दूरों को यह जानना चाहिए कि पुतिलोव के कार्यस्थलों पर गोलियाँ चलाना कोई इत्तेफ़ाक़ नहीं था बल्कि दमनकारी तरीक़ों का एक हिस्सा था, जिसे लागू करने के लिए ज़ार की सरकार तुली हुई थी।

पुतिलोव कार्यस्थलों पर गोलियाँ चलने की ख़बर ने सेण्ट पीटर्सबर्ग के मज़दूरों पर ज़बरदस्त प्रभाव डाला। उनमें उतना ही ज़्यादा आक्रोश था, जितना लीना की गोलियाँ चलने की ख़बर के कारण था। गुप्त पुलिस, जिसने सभी चीज़ों को "आपराधिक आन्दोलन" पर ला दिया था, ने यह रिपोर्ट की कि "पुतिलोव मज़दूरों पर गोलियाँ चलने के बारे में मज़दूरों के छापेख़ाने में लेखों के प्रकाशन ने जनता पर एक छाप छोड़ी है, जो अपनी तीव्रता और प्रभाव के मामले में एक अपवाद है।"

पुलिस ने इस आग को सीमित रखने के प्रयास किये। गोली चलने की ख़बर वाली प्राव्दा की सभी कॉपियों को ज़ब्त कर लिया गया, हालाँकि कोई क़ानूनी आदेश जारी नहीं किया गया था। ऐसा केवल सड़कों पर ही नहीं हुआ; नारवा ज़िले में रहने वाले सभी अख़बार विक्रेताओं के घरों में भी तलाशियाँ ली गयीं। प्राव्दा की जिस कॉपी पर पुलिस के हाँथ पड़ते, वे उसे ले लेते थे।

"यूनियन ऑफ़ रशियन पीपल" ने मज़दूरों के ख़ून की माँग की

ब्लैक हण्ड्रेड्स ने ख़तरे को भाँप लिया और ज़ार और पितृभूमि तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन के सभी निशानों को ख़त्म करने के लिए अपनी ड्यूटी निभाने के लिए पुलिस को बुलाया। "यूनियन ऑफ़ रशियन पीपल" का अंग, रुशकोए ज़नामया, ने "फाँसी के तख़्ते की ओर बादायेव" नामक अपने एक लेख में ऐतिहासिक रूप से ख़ून की माँग की।

गोली चलने के बाद वाले दिन, पूरे सेण्ट पीटर्सबर्ग में हड़तालें हुईं; कम से कम 70,000 लोगों ने काम बन्द किया। विंकलर वर्क्स के मज़दूरों ने अपने प्रस्ताव में ऐलान किया : "इस नये ख़ूनी-स्नान की ख़बर सुनने पर, हमने काम शुरू ना करने की बल्कि हड़ताल द्वारा इसका जवाब देने की प्रतिज्ञा ली है। हमारा आक्रोश शब्दों से परे है और हमने प्रतिज्ञा ली है कि अब हम ऐसी चीज़ों को सहन नहीं करेंगे...।" अगले दिन, प्राव्दा इस तरह के प्रस्तावों से भरा हुआ था और सड़कों पर प्रदर्शनकारियों की भीड़ लगी हुई थी। हड़तालियों ने अपने कॉमरेडों को आन्दोलन में शामिल होने के लिए पुकारते हुए दूसरी फ़ैक्टरियों के चारो ओर मार्च किया और प्रदर्शन बर्फ़ के गोले की तरह तेज़ी से बढ़ गया।

सेण्ट पीटर्सबर्ग के मॉस्को ज़िले के प्रदर्शन ख़ास तौर पर तूफ़ानी थे; सभी कार्यस्थल और फ़ैक्टरियाँ बन्द थीं और मज़दूर बाहर सड़कों पर निकले हुए थे। सभी सराय और सरकारी वोदका की दुकानें मज़दूरों की माँग पर बन्द कर दीं गयीं और हाट की सभी दुकानों को बन्द करना पड़ा क्योंकि असिस्टेण्टों ने प्रदर्शन में शामिल होने के लिए काम बन्द किया था। दोपहर के आस-पास, एक विशाल भीड़ ने क्रान्तिकारी गीत गाते हुए पुतिलोव कार्यस्थल की ओर मार्च किया, भीड़ के आगे एक लाल झण्डा ले जाया जा रहा था।

भीड़ का सामना पुतिलोव रेलवे साइडिंग पर पुलिस से हो गया, जिसने गोलियों की बौछार कर दी; प्रदर्शनकारी तितर-बितर नहीं हुए, बल्कि पत्थरों से इसका जवाब दिया। करीब पन्द्रह मिनट तक चलने वाले इस संघर्ष के बाद पुलिस को भगा दिया गया, क्योंकि वे अपनी आख़िरी कारतूस को फ़ायर कर चुके थे। चार मज़दूर घायल हुए और उन्हें अस्पताल ले जाया गया।

दूसरी झड़प वीबोर्ग ज़िले में हुई। ऐवाज़ मज़दूरों के नेतृत्व में एक बड़ा प्रदर्शन सम्पोनिव्स्की प्रॉस्पेक्ट के समानान्तर चलते हुए शहर के केन्द्र तक मार्च कर रहा था और तब पुलिस उनके रास्ते में रुकावट पैदा करने की कोशिश कर रही थी। गोलियाँ चलायी गयीं और पत्थर फेंके गये, मगर सौभाग्यवश कोई घायल नहीं हुआ और भीड़ को पीछे सड़क के किनारे धकेल दिया गया। शहर के सभी कोनों में दिनभर पुलिस के साथ छोटी-छोटी मुठभेड़ें हुईं।

सेण्ट पीटर्सबर्ग में बैरिकेडों पर लड़ाई

उसी दिन बाद में शाम को पार्टी की सेण्ट पीटर्सबर्ग कमेटी ने अगली कार्रवाई की योजना पर चर्चा की। हमारा काम मज़दूरों की स्वतन्त्र कार्रवाई को सख़्त

(पेज 15 पर जारी)

कहानी

बेघर छोटू

– प्रो. शाह आलम ख़ान

सब उसे छोटू कहकर बुलाते थे। उसका ये नाम कैसे और क्यों पड़ गया, ये उसे भी नहीं पता था। उसका क़द छोटा नहीं था। भारत के हिसाब से, वह औसत क़द का था। मगर शायद वह भारतीय था ही नहीं, या शायद था? उसे ख़ुद भी इसका इल्म नहीं था। अभी उसी दिन की तो बात है, 'आधार' कार्यालय के मोटे बाबू ने उसे फ़ॉर्म देने से इन्कार कर दिया था क्योंकि वह अपने 'भारतीय' होने को साबित नहीं कर पाया था। इतने सालों के दौरान जब भी उसने भारतीय होने की कोशिश की थी, वह अपनी 'भारतीयता' साबित करने में नाकाम रहा था।

उसे आजकल ख़ूब काम मिल रहा था क्योंकि ज़्यादा से ज़्यादा दिल्ली वाले शादियाँ कर रहे थे। पिछले साल नवम्बर में एक ऐसा शुभ दिन आया था जब एक ही दिन में राजधानी में तेरह हज़ार बारातें निकली थीं। उस दिन नेक चन्द घोड़ीवाले को अपनी घोड़ी धन्नो से हाथ धोना पड़ गया था। बेचारी को उस दिन दस घण्टों के अन्दर सत्ताइस दूल्हों का बोझ उठाना पड़ा था। थकान के मारे उसने दम तोड़ दिया। जब उसकी मौत हुई तो उसकी पीठ पर अट्ठाइसवाँ दूल्हा विराजमान था जिसके बाप ने धन्नो की मौत को अशुभ संकेत मानकर शादी रद्द कर दी थी। उस समय छोटू बैण्ड में बज रहे गाने पर होंठ हिला रहा था, जब सितारों के आकार वाली फ़्लैश लाइटों की जगमग रोशनी से सजे मैरिज हॉल के ऐन सामने धन्नो ऐसे ढेर हो गयी थी, जैसे कोई लकड़ी का कठपुतला। छोटू को मिलने वाले पचास रुपये भी उस दिन डूब गये थे।

छोटू उस बड़े फ़्लाईओवर के नीचे रहता था जिससे गुज़रकर तमाम सुखी परिवार सुदूर देशों में शानदार छुट्टियाँ बिताकर घर लौटते थे। फ़्लाईओवर के नीचे उसके साथ तीन और भी रहते थे। गर्मियों में वे सड़क के बिल्कुल पास सोते थे, क्योंकि गाड़ियों से निकलने वाली गर्म हवा की वजह से ख़ून के प्यासे मच्छरों की फ़ौज दूर रहती थी। दिल्ली कभी सोती नहीं थी और इसलिए गाड़ियाँ रात-भर गुज़रती रहती थीं और इसलिए छोटू सो सकता था। अजीब बात थी न, कि रात-भर जागने वाले शहर के चलते छोटू चैन से सो लेता था। सर्दियाँ ज़्यादा कठिनाई भरी होती थीं। वे अपनी बरसाती को सड़क के दूसरी ओर स्ट्रीट लैम्प के नीचे बिछा लेते थे। लैम्प से आने वाली पीली रोशनी से उन्हें गर्माहट का एहसास होता था और जब तीनों एक-दूसरे से चिपककर सोते थे तो उनकी नीली पॉलीथीन उनका स्लीपिंग बैग बन जाती थी। किसी भी तरह ज़िन्दा रहने का हुनर बेहद ज़रूरी था। ज़िन्दगी और मौत के मामलों में निजता आदि के कोई मायने नहीं थे। कोहरे वाली रातों को उन्हें और भी ज़्यादा पेट्रोल सूँघना पड़ता था। उन्हें धुँधले सपनों से भरी नशीली नींद आ जाती थी। दिल्ली की बढ़ती कारों और बढ़ते प्रदूषण का मतलब था और ज़्यादा कोहरे भरी रातें और सूँघने को पहले से भी ज़्यादा पेट्रोल।

बेघर होना कोई पहचान नहीं थी, यह एक प्रक्रिया थी। बेघर का मतलब महज़ बिना घर के होना नहीं था, यह इससे भी बढ़कर था। इसका मतलब था प्यार के बिना, देखभाल के बिना, शिकायतों के बिना, किसी पर ग़ुस्सा हुए बिना, गर्म रोटी की चाह रखे बिना, किसी भी चीज़ के बिना जीना। यह ऐसे शून्य में जीना था जहाँ कुछ भी नहीं था। छोटू को जब से याद है तभी से वह बेघर था। ख़ालीपन का शून्य ही उसका अस्तित्व था। वह इस निर्मम हृदयहीन शहर में बड़ा हुआ था। शादी की पार्टियों में वेटर का काम करता था। दिल्ली के बहुत से बेघर ऐसा करते थे। शादी की दावत में खाना परोस रहे बेघर एक ऐसी विडम्बना थी जो दिल्ली शहर अपने नागरिकों के सामने रोज़ पेश करता था, मगर किसी को परवाह नहीं थी। कभी-कभी वह बारात के बैण्ड में गाने के बोल पर होंठ हिलाने का काम भी करता था जैसे वह उस रात कर रहा था जब धन्नो की मौत हुई थी। वेटर के काम में थोड़े ज़्यादा पैसे मिल जाते थे लेकिन उसे ज़्यादा मेहनत भी करनी पड़ती थी। काम के घण्टे तय नहीं थे। कुछ शादियाँ रात-भर चलती थीं जिसके कोई अतिरिक्त पैसे नहीं मिलते थे।

उस दिन बैण्डवाले ने उसे सिविल लाइन्स के बँगले में होने वाली आलीशान शादी के बारे में बताया था। जिसमें शहर का हर बड़ा नेता आने वाला था। उस शादी में परधानमन्त्री भी आने वाला था। बहुतों की तरह, छोटू को भी परधानमन्त्री बहुत अच्छा लगता था। वह वाक़ई उस शादी में वेटर बनने के लिए जाना चाहता था। बैण्डवाले के आदमी ने छोटू का नाम लिखने के लिए उससे कुछ वसूली भी कर ली। छोटू जानता था कि उसे ठगा जा रहा है लेकिन उसे परवाह नहीं थी। परधानमन्त्री को जीते-जागते देखने का मौक़ा बार-बार थोड़े ही मिलना था। इससे बढ़कर कुछ नहीं था।

शादी का दिन आ गया। छोटू ने अपने ठिकाने के पास स्ट्रीट लाइट के नीचे बैठने वाले नाई से बाल बनवाये और गँदला पानी देने वाले सरकारी नलके पर जाकर नहाया। बैण्डवाले ने उसे कत्थई रंग का सूट पहनने को दिया जिसमें कड़क चीनी कॉलर और कन्धों पर सुनहली पट्टियाँ लगी थीं। बैण्ड पार्टी और वेटर दो घण्टा पहले बँगले पर पहुँच गये।

शानदार ढंग से सजे बँगले के फाटक पर लकड़ी का एक छोटा-सा गेट लगा था जिसे छोटू ने पहले नहीं देखा था। उसके नीचे से जब कोई गुज़रता था तो हल्की-सी 'टिंग' की आवाज़ आती थी। अचानक काला सफ़ारी सूट पहने एक हट्टे-कट्टे शख़्स ने उसे रोक दिया।

"अपना आइडेण्टिटी कार्ड दिखाओ – पहचान पत्र!" उसने कठोर आवाज़ में कहा।

छोटू के पास कोई पहचान नहीं थी। उसका नाम भी उसका अपना नहीं था। वह चकरा गया। सफ़ारी वाले शख़्स ने उसे खींचकर किनारे कर दिया। दूसरे बेघर वेटरों को भी अन्दर जाने से रोक दिया गया। उन्हें ही जाने दिया गया जिनके पास पहचान पत्र था। बैण्डवाले ने अन्दर जाने वालों को ज़्यादा पैसे देने का वादा किया। अचानक उसे काम करने वालों की कमी पड़ गयी थी।

छोटू और दूसरों के वापस जाने से पहले बैण्डवाले ने कड़क कॉलर वाली उनकी कत्थई वर्दियाँ उतरवा लीं। अपनी धूसर टीशर्ट और कार्गो पैण्ट पहने छोटू को अचानक लगने लगा कि वह नंगा हो गया है। उसके कपड़े पसीने से भीगे हुए थे। आँसूभरी आँखों से ढलते सूरज को देखते हुए वह पैदल फ़्लाईओवर के नीचे लौट आया। शहर अब शाम के लिए जाग रहा था। सड़क के दूसरे किनारे पर लगी विशाल होर्डिंग पर परधानमन्त्री की तसवीर थी जिसके मोटे होंठ ऐसे फैले थे जिससे लगता था कि वह मुस्कुरा रहा है।

उस पर लिखा था : "सबका सपना, घर हो अपना।"

(प्रो. शाह आलम ख़ान,
एम्स, नयी दिल्ली)
अंग्रेज़ी से अनुवाद : **सत्यम**

पुतीलोव कारख़ाने के मज़दूरों पर गोलीबारी और उसके विरुद्ध संघर्ष

(पेज 14 से आगे)

बनाना और इसे एक शक्तिशाली, संगठित आन्दोलन में रूपान्तरित करना था। हमने इस जन हड़ताल को अगले तीन दिनों तक चलाने और नये प्रदर्शनों को संगठित करने का फ़ैसला किया, जिनमें से पहला वीबोर्ग क्षेत्र में हो। 7 जुलाई के लिए एक बड़ा प्रदर्शन तय किया गया, वह दिन जब फ्रांसीसी गणराज्य के राष्ट्रपति, पॉइनकेयर, सेण्ट पीटर्सबर्ग आने वाले थे।

पहले हमने बाकू के हड़तालियों के समर्थन में आवेदन जारी किये थे; अब आन्दोलन का सबसे बड़ा मक़सद सेण्ट पीटर्सबर्ग में मज़दूरों पर गोलियाँ चलाये जाने के विरोध में प्रतिवाद जताना था। कार्रवाई की एक आम योजना तैयार करने के लिए हमने शहर के बाहर पोरोखोव्ये स्टेशन के पास फ़ैक्टरियों से आये प्रतिनिधियों की एक मीटिंग का प्रबन्ध किया। प्रतिनिधियों को एक पासवर्ड दिया गया और किसी व्यक्ति को इसका इस्तेमाल करके जंगल से होकर मीटिंग की जगह तक लाने के लिए मार्गदर्शक नियुक्त किये गये।

5 जुलाई को, प्रदर्शन और पुलिस के साथ मुठभेड़ फिर से हुई, मगर एक भी गोली नहीं चलायी गयी, हालाँकि पुलिस ने अपनी तलवारों और चाबुकों का खुलकर इस्तेमाल किया। रविवार का दिन होने के कारण 6 जुलाई को कोई बड़ा प्रदर्शन नहीं हुआ, लेकिन अगले दिन के लिए तय किये गये जन-कार्रवाई की तैयारियाँ मज़दूर-वर्ग के क्षेत्रों में की गयीं।

7 जुलाई की सुबह शहर वैसा ही दिखा जैसा वह 1905 के दौरान दिखा था। बहुत कम अपवादों के साथ, फ़ैक्टरियाँ और कार्यस्थल बन्द कर दिये गये और लगभग 130,000 मज़दूर हड़ताल पर थे। मज़दूर सड़कों पर आते चले गये और पुलिस की पहरेदारी उन्हें नियन्त्रित करने में पूरी तरह नाकाम रही; वे केवल नेवस्की प्रोस्पेक्ट में ही किसी प्रदर्शन को होने से रोकने में कामयाब हुए। फ्रांस के राष्ट्रपति की उपस्थिति में किसी "बदनामी" से बचने के मक़सद से, मज़दूरों को शहर के केन्द्र में पहुँचने से रोकने के लिए वहाँ विशाल पुलिस बल की तैनाती की गयी। आन्दोलन केवल प्रदर्शन तक ही सीमित नहीं था। सामान्य ट्रैफ़िक बाधित हुआ; ट्रामगाड़ियों को रोका गया और यात्रियों को बाहर आने के लिए मजबूर किया गया, और नियन्त्रण को हटा दिया गया। मज़दूर गाड़ियों में घुस गये और उन्हें चलने से रोका। बाद में दिन के समय एक ट्रामवे डिपो के लोग हड़तालियों के साथ शामिल हो गये।

मज़दूरों ने फिर से सभी सरकारी वोदका की दुकानें और बीयर-हाउस को, कुछ मामलों में बोतलें तोड़कर और बीयर को दूर उड़ेलकर, बन्द करवा दिया। इसके बाद यहाँ तक कि बुर्जुआ अख़बारों ने भी असल गम्भीरता का उल्लेख किया, जो उन दिनों मज़दूर-वर्गीय क्षेत्रों में उभरी थी। पिछले दिनों के अनुभव से शिक्षा लेकर पुलिस ने आग वाले हथियारों का इस्तेमाल करने का जोखिम नहीं उठाया, लेकिन बिखरे हुए अलग-थलग समूहों और व्यक्तियों पर चाबुकों और तलवारों से हमले किये। मज़दूरों में पुलिस के सारे डर ग़ायब हो गये; उन्होंने पुलिस के अत्याचार के खिलाफ़ ज़बरदस्त लड़ाई लड़ी, और कई हाथापाई भी हुई।

उसी शाम शहर के गवर्नर और आन्तरिक मामलों के मन्त्री ने दिन की घटनाओं के बारे में एक ज़रूरी सलाह-मशविरा करके सख़्त क़दम उठाने का फ़ैसला किया। अगली सुबह शहर के गवर्नर ने लोगों को इन गड़बड़ियों के नतीजों की धमकी देते हुए और 1905 में ट्रेपोव द्वारा जारी किये गये मशहूर आदेश : "किसी भी कारतूस को बेकार ना होने दिया जाये" को फिर से लागू करते हुए एक घोषणा की।

इसके बावजूद ढीला पड़ने के कोई निशान तक नहीं थे और आने वाले दिनों में 12 जुलाई तक आन्दोलन और बढ़ता ही चला गया। हड़तालों की संख्या 150,000 तक पहुँच गयी, और 9 जुलाई को सेण्ट पीटर्सबर्ग की सड़कों पर बैरिकेड देखे गये। ट्रामगाड़ियाँ, बैरल, खम्भे इत्यादि ने बैरिकेड बनाने के लिए सामग्री का काम किया, जो ख़ास तौर पर वीबोर्ग ज़िले में बनाये गये थे। सारा ट्रैफ़िक बाधित हो गया और कई क्षेत्रों में मज़दूरों ने सड़कों पर पूरा क़ाबू पा लिया।

1914 का जुलाई आन्दोलन युद्ध के ऐलान के कारण बाधित हो गया। हालाँकि 17 जुलाई (पुरानी शैली) को युद्ध का ऐलान होने से दो दिन पहले ही हड़तालें रोक दी गयी थीं, देशभक्तिपूर्ण प्रदर्शन पहले ही शुरू हो गये थे और पुलिस का काम आसान था। उसी समय, वे निर्माता जिन्होंने तालेबन्दी का ऐलान किया था, अब युद्ध की माँग और मुनाफ़े की उम्मीद में रियायतें देने को तैयार थे।

यह पूरी तरह सम्भव है कि किसी भी मामले में जुलाई के प्रदर्शन ने इन्क़लाबी संघर्ष के एक निर्णायक बिन्दु तक नहीं पहुँचाया, मगर उस पल के लिए अब ज़्यादा देर नहीं की जा सकती थी। यह इस इन्क़लाबी ज्वार के अगले मोड़ पर पहुँचने वाला था, जो जुलाई के बाद के भाटे के पीछे-पीछे तुरन्त आ गया होता। लेकिन युद्ध के द्वारा उस पल को लगभग ढाई सालों के लिए टाल दिया गया। हालाँकि युद्ध के वर्षों के मामले में जुलाई 1914 और फ़रवरी 1917 अलग-अलग थे, फिर भी वे इन्क़लाबी आन्दोलन के आम विकास में सीधे तौर से आपस में जुड़े हुए थे।

अनुवाद : **अभिषेक**

* एक वार्ड के पुलिस ऑफ़िसर इंचार्ज।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2017-2019
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

पूँजीपतियों के मुनाफ़े की दर में गिरावट रोकने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाती मोदी सरकार

पराग वर्मा

कांग्रेस, भाजपा और तमाम संसदीय पार्टियाँ पूँजीपतियों के हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं और पूँजीपतियों के फ़ायदे के लिए नीतियाँ बनाने का काम करती आयी हैं। पूँजीपतियों के हित में ही कांग्रेस ने उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियाँ लागू कीं और भाजपा ने उन्हीं नीतियों को ज़्यादा तेज़ रफ़्तार से आगे बढ़ाया। जिस समय देश में चुनावी माहौल गर्म था, उसी समय अर्थव्यवस्था की खस्ताहाल स्थिति की भी तमाम ख़बरें आ रही थीं। यहाँ तक कि प्रधानमन्त्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के एक सदस्य ने अर्थव्यवस्था में चल रहे गतिरोध पर गहरी चिन्ता जताते हुए उसके भविष्य को लेकर निराशाजनक बातें कहीं। दरअसल भारत की अर्थव्यवस्था भी मुनाफ़े की गिरती दर के संकट के भँवर में बुरी तरह फँस चुकी है। इस पूँजीवादी संकट से निजात पाने के लिए पूँजीपति वर्ग के तमाम कलमघसीट नयी-नयी तरक़ीबें सुझा रहे हैं। नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा के दूसरी बार चुनाव जीतने के कुछ ही दिनों बाद नीति आयोग के उपाध्यक्ष राजीव कुमार ने एक साक्षात्कार में ये घोषणा कर दी है कि आने वाले सौ दिनों में बड़े-बड़े आर्थिक सुधारों के क़दम सरकार द्वारा उठाये जायेंगे। इन सभी आर्थिक सुधारों की प्रमुख दिशा होगी विदेशी निवेशकों को ज़्यादा से ज़्यादा निवेश भारत में करने के लिए आकर्षित करना। ज़ाहिर सी बात है विदेशी निवेशक हों या भारतीय पूँजीपति, सभी निवेश करने में इच्छुक तभी होंगे जब उन्हें यहाँ पहले से अधिक मुनाफ़ा दिखायी पड़ेगा। पूँजीपतियों के मुनाफ़े का प्रमुख स्रोत होता है मज़दूर के श्रम पर डाका।

इसी को ध्यान में रखते हुए नीति आयोग के उपाध्यक्ष राजीव कुमार ने जिन तीन प्रमुख आर्थिक सुधारों की घोषणा की है वो कुछ वे कुछ इस प्रकार हैं – "श्रम क़ानूनों में सुधार किया जायेगा। पुराने जटिल क़ानूनों को आसान करने के इरादे से 44 केन्द्रीय श्रम क़ानूनों की जगह चार श्रम संहिताओं में श्रम क़ानूनों को समेटा जायेगा", "सरकार और सरकारी उपक्रमों द्वारा जो ज़मीन उपयोग में नहीं लायी जा रही है उसको एक संयुक्त स्टॉक के रूप में दर्ज किया जायेगा और एक लैण्ड बैंक स्थापित किया जायेगा, जिससे इस लैण्ड बैंक से पूँजीपतियों को आसानी से ज़मीन बाँटी जा सके", "लगभग 42 सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों का निजीकरण किया जायेगा और रक्षा और रेलवे जैसे क्षेत्रों में भी अब निजी कम्पनियों को हिस्सेदारी दी जायेगी"।

आइए देखते हैं कि इन घोषणाओं का भविष्य के दिनों में नीतियों के रूप में लागू होने पर मायने क्या हैं। पहली सुधार की घोषणा श्रम क़ानूनों से सम्बन्धित है। संगठित औद्योगिक मज़दूरों ने वर्षों से लगातार संघर्ष चलाते हुए सरकारों को मजबूर किया कि वह उद्योगपतियों द्वारा किये जा रहे शोषण या सम्भावित अतिशोषण से बचने हेतु कुछ क़ानूनी सुरक्षा प्रदान करे और इसी आधार पर श्रम क़ानून बने जो कुछ हद तक मज़दूरों को सुरक्षा प्रदान करते थे। पर अब यही श्रम क़ानून पूँजीपतियों के बेहिसाब मुनाफ़े में बाधा बन रहे हैं और इसलिए पूँजीपतियों द्वारा समर्थित सरकार इस कोशिश में लगी है कि इन श्रम क़ानूनों को थोड़ा ढीला कर दिया जाये जिससे पूँजीपतियों के लिए मुनाफ़ा कमाना आसान हो जाये। "विदेशी निवेश बढ़ाने" और "ईस ऑफ़ डूइंग बिज़नेस" जैसे विकास के जुमलों के अन्तर्गत किये जाने वाले श्रम क़ानून सुधारों का मतलब है पहले से स्थापित श्रम क़ानूनों को और कमज़ोर कर देना। मोदी सरकार 44 केन्द्रीय श्रम क़ानूनों का 4 श्रम संहिताओं में विलय करेगी। इस विषय में विस्तृत जानकारी 'मज़दूर बिगुल' के इसी अंक में एक अलग लेख में दी गयी है।

दूसरा आर्थिक सुधार जिसकी चर्चा नीति आयोग के उपाध्यक्ष ने की वह विदेशी निवेशकों को 'लैण्ड बैंक' के ज़रिये आसानी से ज़मीन मुहैया कराने की है। सार्वजनिक उपक्रमों से लेकर ये ज़मीन क्लस्टर्स के रूप बहुत कम क़ीमतों पर विदेशी पूँजीपतियों को दी जायेगी। विदेशी कम्पनियों ने पिछले सालों में जिन ज़मीनों का इस्तेमाल किया उनमें से ज़्यादातर कृषि भूमि या फिर जंगल की ज़मीन थी। कृषि भूमि या जंगल की ज़मीन को उद्योगपतियों को देने से वहाँ की स्थानीय आबादी को बेदख़ल करना पड़ता है और उन्हें उनके पारम्परिक व्यवसाय से दूर करना पड़ता है जिसका आम जनता विरोध करती है। हालाँकि सरकार का दमनतन्त्र इन छुटपुट विरोधों का गला बड़ी आसानी से ही घोंट देता है, परन्तु पूँजीपति वर्ग तो यह चाहता है कि नीतियों द्वारा ऐसी व्यवस्था बने जिससे प्राकृतिक सम्पदा पर पूँजीपतियों का अधिकार भी हो जाये और जनता का कोई विरोध भी ना झेलना पड़े। उद्योग लगाने पर होने वाली पर्यावरण की हानि को लेकर भी विदेशी कम्पनियों को क़ानूनी तौर पर पर्यावरणविद द्वारा चुनौतियाँ मिलती हैं। पर यदि औने-पौने दाम में ऐसी ज़मीनें विदेशी कम्पनियों को मिल जायें जो पहले से ही सरकारी सार्वजनिक संस्थाओं के मालिकाने के अन्तर्गत आती हैं तो मालिकाना सम्बन्धी और पर्यावरण सम्बन्धी क़ानूनी दाँवपेंच से भी पूँजीपति वर्ग आसानी से बच जायेगा और बेलगाम प्राकृतिक सम्पदा का दोहन कर सकेगा।

तीसरे आर्थिक सुधार के रूप में नीति आयोग के राजीव कुमार ने बताया कि बीमार चल रहे सरकारी उपक्रमों की लिस्टिंग हो रही है और उनमें से 42 से ज़्यादा सरकारी उपक्रमों का या तो निजीकरण किया जायेगा या उन्हें बन्द कर दिया जायेगा। 24 उपक्रमों को तो बहुत जल्दी ही निजी हाथों में सौंपा जा सकता है और आयोग पहले ही इन खस्ताहाल सार्वजनिक कम्पनियों के निजीकरण की सलाह केन्द्र सरकार को दे चुका है, जिनमें एयर इण्डिया प्रमुख है। एयर इण्डिया में बहुत जल्द ही विदेशी निवेश देखने को मिल सकता है। सवाल यह उठता है कि क्या इन उपक्रमों का निजीकरण कर देने से इनकी आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी और इनको दीवालिया होने से बचा लिया जायेगा? यदि एक तरफ़ सरकारी एयर इण्डिया के दीवालिया होने का उदाहरण है तो दूसरी तरफ़ निजी कम्पनियों किंगफ़िशर और जेट एयरवेज़ के उदाहरण भी हैं। बेहतर गुणवत्ता का उत्पादन और बेहतर आर्थिक प्रदर्शन का कारण बताते हुए सरकार इन सार्वजनिक कम्पनियों को सस्ते दाम पर पूँजीपतियों को बेच देना चाहती है। सरकारी उपक्रम सरकार को डिविडेण्ड भरते रहे हैं और सामाजिक न्याय सम्बन्धी अनेक कार्य करते रहे हैं, जिसके कारण उनका आँकलन केवल मुनाफ़ा कमाने की क्षमता देख के किया जायेगा तो उनमें से अधिकांश नॉन-परफ़ार्मिंग ही निकलेंगे। सरकारी उपक्रमों की सम्पत्ति दरअसल आम जनता की सम्पत्ति होती है और उसको निजी हाथों में बेचकर या विनिवेश करके सरकारें अपने कार्यकाल में हुए वित्तीय घाटे को सुधारती हैं।

मोदी सरकार ने भी इस वित्तीय वर्ष में 85 हज़ार करोड़ के सरकारी उपक्रमों के विनिवेश का लक्ष्य रखा है और हर साल इस लक्ष्य को बढ़ाया जा रहा है। 2019-20 में सार्वजनिक कम्पनियों के विनिवेश से 90 हज़ार करोड़ रुपये हासिल करने का लक्ष्य है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रेलवे इत्यादि सभी क्षेत्रों में भी निजीकरण को बढ़ावा दिया जा रहा है जिसके कारण मूलभूत सेवाएँ भी महँगी हो रही हैं और आम जनता की पहुँच से दूर होती जा रही हैं। यदि कोई उपक्रम घाटे में चला जाता है तो सरकार उसके पुनर्जीवन के लिए राहत पैकेज भी नहीं देती और वहीं दूसरी तरफ़ प्राइवेट कम्पनियों के दीवालिया हो जाने पर उनके बड़े-बड़े क़र्ज़ भी सरकार माफ़ कर देती है। सरकारी उपक्रमों को डिविडेण्ड देने पर सरकार मजबूर करती है और उन्हें उनके शेयर भी वापस ख़रीदने पर ज़ोर देती है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति डगमगा जाती है। ऐसी परिस्थितियों में सरकार इन उपक्रमों का मूल्यांकन करवाती है और ज़ाहिर सी बात है कि नकदी में कमज़ोर और घाटे में जाते उपक्रम की क़ीमत बाज़ार में ज़्यादा नहीं आँकी जाती और इस तरह सरकारी उपक्रमों को बीमार करके उनके एसेट्स को सरकार औने-पौने दाम में पूँजीपतियों को बेच देती है और उन पैसों से सरकारी ख़ज़ाने में हुए वित्तीय घाटे की पूर्ति भी करती है। राष्ट्रीय सम्पदाओं का दोहन करना सरकार अपना हक़ समझती है और जनता को इन सभी क़दमों के पीछे बेहतर विकास दर लाने का झाँसा देती रहती है।

ग़ौरतलब है कि भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर 2018 के आख़िर में 5.8 प्रतिशत आँकी गयी जोकि पिछले पाँच सालों में सबसे कम है और बताया जा रहा है कि 2019 के पहले और दूसरे क्वार्टर में इसमें और ज़्यादा गिरावट के संकेत हैं। ढाँचागत पूँजीवादी संकट दिन-प्रतिदिन और तीव्र हो रहा है और साफ़ तौर पर घटती विकास दर और बढ़ती बेरोज़गारी इसके सूचक हैं। पूँजीवादी अर्थशास्त्री इस संकट की जड़ में मौजूद निजी मुनाफ़े पर आधारित इस व्यवस्था को नज़रअन्दाज़ करते हैं और कोशिश में लगे रहते हैं कि कुछ आर्थिक निवेश बढ़ जाये जिससे उत्पादन बढ़े और विकास दर सही हो जाये, परन्तु ऐसा होता नहीं है क्योंकि यह दीर्घकालिक आर्थिक संकट पूँजीवादी ढाँचे से जुड़ा हुआ है और इसके समाधान का रास्ता पूँजीवाद पर सवाल उठाकर ही निकलेगा। सुधार प्रक्रिया में मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए पूँजी और श्रम के बीच संघर्ष और तीखा होता जाता है और पहले के संकट से भी बड़ा संकट पैदा होता है। इस गहराते आर्थिक संकट का हल इसी ढाँचे में रहकर सुधार करने से नहीं बल्कि इस पूँजीवादी ढाँचे को बदलने से निकलेगा।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006